सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन: सवाई, आगरा

वर्ष ८ | मई १९७५ | अंक २

प्रकाशक

इस अंक में:—

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. विभवैः किम्प्रयोजनम् ?	....	१
२. योग में गुरु का स्थान	प्रो० योगेश्वर अमन्त	
(हमारा विशेष लेख)	श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. ब्रह्मचारी की उन्नति के साधन	श्री सत्यपाल आर्य,	५
४. मेरा प्रणव नादानुभव	श्री ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य	९
५. पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्	श्रीमद्भागवद् से	१४
६. दो गद्यगीत	श्रीमति विनेशनंदिनी	१७
७. कबीर साहब का चमत्कार	श्री शिवराम सागर,	१८
८. हार जीत	सु० श्री निर्मला देशपांडे	२२
९. शिव मानस पूजा	श्री पं० जगदीशशरण बिलगइयाँ	२७
१०. विश्व निर्मात्री शक्ति नारी	श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री	३६
११. प्रार्थनामय जीवन	श्री भगवतीचरण वाजपेयी	४१
१२. चैतन्य वस्तु का विकास	श्री लालजीराम शुक्ल	४४
१३. प्रभुजी की जयन्ती के	श्री रामदास गुप्त पत्रकार	
भाव भीने कार्यक्रम		५२

भूल-सुधार

[पृष्ठ १८ पर 'कबीर साहब का चमत्कार' शीर्षक लेख छपने के बजाय पेज १६ पर भूल से छप गया है और जो सेंटर पेज १६ पर आना चाहिए था वह पेज १८ पर छप गया है पाठक पृष्ठ १८ और पृष्ठ १६ की इस भूल को पढ़ते समय सुधार लेने की कृपा करें। सं० सम्पादक]

संयुक्त सम्पादक
दिव्य

फोन ६६१६८

आइए आइए !　　　　　　　　　　　　　　　　　　अवश्य देखिए !!

योग साधन आश्रम ऋषिकेश का

वार्षिक-योग महोत्सव

सभी भाई बहिनों को यह जानकर परम हर्ष होगा, कि अपने योग-साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक योग महोत्सव मिती ज्येष्ठ सुदी अष्टमी नवमी-दशमी तदनुसार ता० १६,१७ और १८ जून सोम, मंगल, बुधवार, सन् ७५ ई० को मनाया जायगा।

उत्सव का कार्य-क्रम बहुत ही रोचक एवं हृदयग्राही बनाने का आयोजन किया जा रहा है। उत्सव में योग-सिद्धान्तों पर उच्चकोटि के प्रवचन उपदेश भजन एवं सुमधुर शास्त्रीय संगीत आदि का कार्यक्रम रहेगा। आश्रम के ब्रह्मचारी अपनी यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन भी करेंगे। सभी सत्संग प्रेमियों को इस समारोह में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिए।

सभी भाई बहिनों को श्री गुरुदेव जी की ओर से इस उत्सव के आमन्त्रणपत्र भी भेजे जा रहे हैं। किन्तु डाक-व्यवस्था ठीक न होने के कारण सभी पर नहीं पहुँच पाते हैं। अतः सभी भाई-बहिन इस सूचना को ही अपना आमन्त्रण समझते हुए उत्सव में सम्मिलित हों।

नोट—१८ जून बुधवार गंगा दशहरा को नगर शोभा यात्रा (जुलूस) का आयोजन है जिसमें बैंड बाजे के साथ श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल शामली, श्री ललितमोहन संकीर्तन मण्डल आगरा के अतिरिक्त और भी अनेक मण्डलियां भाग ले रही हैं। शोभा यात्रा सभी सुन्दर झांकियों एवं साज बाज के साथ शाम के लगभग ६ बजे योग साधन आश्रम से प्रारम्भ होकर ऋषिकेश के मुख्य बाजारों में होती हुई रात के लगभग ११ बजे आश्रम पहुँचेगी। अतः सभी सत्संग प्रेमियों को उत्साह के साथ इस शोभा-यात्रा में सम्मिलित होना चाहिये।

निवेदक :—

मंत्री—योग-साधन आश्रम

रेलवे रोड, ऋषिकेश (उ० प्र०)

सिद्ध योग

वर्ष ८
अङ्क २

मई
१९७५

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुविषयकम् योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग'॥

विभवैः किम्प्रयोजनम् ?

भिक्षा कामदुघा धेनुः कन्थाशीत निवारिणी।
अचलास्तु शिवे भक्तिर्विभवैः किम्प्रयोजनम्॥

जब भिक्षा ही कामधेनु है कथरी ही जाड़ा मिटाने वाली है शिव में ही अचल भक्ति है तो फिर अन्य ऐश्वर्य की आवश्यकता ही क्या है ?

धर्म एकोहि निश्चलः

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवितयौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलः॥

लक्ष्मी चंचल है, प्राण चंचल है, जीवन और यौवन दोनों ही चंचल है, इस तरह चल और अचल संसार में एकमात्र धर्म ही निश्चल है।

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

हमारा विशेष लेख—

योग में गुरु का स्थान

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

—ॐ—

'सिद्धयोग' के पिछले अङ्क में प्रकाशित अपने विशेष लेख में हमने 'सार्व भौम विद्या योग' शीर्षक से कुछ विचार प्रस्तुत किये थे। यह ठीक है कि भूमण्डल पर जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी बिना किसी वर्ग जाति और स्थान भेद के इस विद्या को ग्रहण करने का अधिकारी है। लेकिन अधिकारी शब्द का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति समझ नहीं पाता।

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की अभिलाषा रहती है कि वह जिस विद्या अथवा विषय को ग्रहण करना चाहता है उसमें उसका प्रवेश शीघ्रातिशीघ्र हो जाय और शीघ्रातिशीघ्र ही वह उस विद्या में ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त करले और उस विद्या का पारंगत विद्वान कहलाने लगे तथा वह औरों को शिक्षा देने वाला आचार्य भी बन जाय। योग मार्ग में प्रवेश पाने वालों में यह अधिकार-भावना विशेषतया पाई जाती है। थोड़ी सी साधना के पश्चात् ही बहुधा योग मार्ग के साधक अपने को योग का आचार्य समझने लगने की भूलकर बैठते है इसका परिणाम यह होता है कि वे न तो स्वयं मार्ग दर्शक बन पाते है और न दूसरों को ही किसी प्रकार का मार्ग दर्शन देने की क्षमता प्रदान कर पाते है। कौन विद्यार्थी किस कक्षा में प्रवेश पाने का अधिकार रखता है इसे वह सुयोग्य प्रिन्सिपल या आचार्य ही जान पाता है जिसने शतशः सहस्राधिक छात्रों को अपनी छत्र-छाया में रखकर सर्वशास्त्र निष्णात् एवं सामर्थ्यवान बना दिया हो। जो आचार्य अपने विद्यार्थियों के बला-बल को देखकर उन्हें शिक्षा देता है, वास्तव में वही सच्चा और सुयोग्य आचार्य कहा जाता है। और ऐसे ही अनुभवी आचार्य अपनी सद्शिक्षाओं और मार्ग दर्शन से सुयोग्य विद्यार्थियों को उनके लक्ष्य तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त कर पाते है। और ऐसे ही आचार्य को हम अधिकारी आचार्य या अधिकारी गुरु कहकर पुकार सकते हैं। हमारे शास्त्र कहते है कि—

आचार्य्यवान् हि पुरुषो वेद:

अर्थात् आत्मा परमात्मा को वही जान पाता है जो आचार्यवान या गुरु वाला हो। योगमार्ग परमात्म-तत्व का साक्षात् कराने वाला मार्ग है अत इसमें आचार्य या गुरु के मार्ग दर्शन की अनिवार्य्य आवश्यकता रहती है।

आजकल लोक प्रवाह के प्रचार में बहुत

स्थानों पर इस प्रकार की चर्चा होती देखी गई है कि जो लोग ईश्वर को मानते हैं एवम् ईश्वर के भक्त हैं उनको गुरु की क्या आवश्यकता। यदि इनकी बात को सत्य मान लिया जाय तो 'आचार्यवान ही पुरुषो वेदः' की उक्ति व्यर्थ हो जाती है। जाना जाने वाला पुरुष और जीव है और जनाने वाला गुरु और वस्तु है। यद्यपि आत्म तत्वेन दोनों एक ही हैं किन्तु फिर भी जाना जाने वाला और जनाने वाला इन दोनों क्रियाओं से वस्तु सत्ता में यह दोनों वस्तु भिन्न-भिन्न दिखलाई देती हैं। इस लिए आचार्यवान हि पुरुषो वेदः इस श्रौत सिद्धान्त को सामने रखते हुए परमार्थ गामी पुरुषान्वेषण में तत्पर रहने वाले साधक को आचार्य जाना बतना बहुत ही आवश्यक हो जाता है। वह आचार्य ही गुरु कहलाता है। स्कंध पुराणान्तर्गत गुरु गीता में ऋषियों की सभा में श्री सूत जी ने गुरु का स्वरूप समझाते हुए अपने मुखार-विन्दु से स्वयं कहा है:

गु शब्द स्त्वंधकारोस्ति ।
रु शब्दस्तन्निरोधकः ॥
अंधकार निरोधित्वाद,
गुरुरित्यादि धार्यते ॥

अर्थात् गु कार शब्द का प्रयोग अंधकार के लिए किया गया है, गु नाम अंधकार का है और नाम-प्रकाश का है। गुरुदेव अंधकार का नाश करने वाले होने से गुरु कहलाते हैं। गुरुदेव के स्वरूप में अंधकार निवारण की शक्ति होती है। इसलिए ही वे गुरु कहलाते हैं। जिस स्थान में गुरु का निवास हो जाता है। वहां से अंधकार बिल्कुल दिल्कुल दूर हो जाता है। और शुद्ध तेज का प्रकाश हो जाता है। यही कारण है कि योगिराजों के सिद्ध स्थलों पर अंधकार पूर्णमिकजों वॉ का वास रहता ही नहीं। छोटे-छोटे अंधकारी जीव ऐसे स्थानों पर जा ही नहीं सकते जहां पर सर्व शक्तिसम्पन्न योगिराजों का निवास रहा है। यही कारण है कि हमें अपने इतिहास में इस प्रकार के कथन मिलते हैं कि—

यस्मिन देशे वसेत योगी ।
ध्यान योग विचक्षणः ॥
सोपि देशो भवेत पूतः ।
किं पुनस्तस्य बांधवः ॥

अर्थात् जिस स्थान पर एक ध्यानयोगी वास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसके भाई-बन्धों का तो कहना ही क्या।

योग मार्ग के साधकों को इस प्रकार के सामर्थ्यवान गुरु की प्रतिक्षण आवश्यकता रहती है। हमारे शास्त्रों में परमार्थ प्रदर्शन करने वाले गुरुओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है। प्रथम श्रेणी है वे जो अपने अनुभूत ज्ञान को अपनी वाणी के द्वारा अपने जिज्ञासु साधकों को उपदेश देकर समझाते हैं और अपने बुद्धि कौशल से उदाहरण के साथ शास्त्रीय सिद्धान्तों को समझा देते हैं, तब साधक उनकी वाणी पर विश्वास करके उनकी आज्ञानुसार अपनी साधना को करता चला जाता है और निरन्तर अभ्यास के

फलस्वरूप अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता। उनके रास्ते में जहां-जहां छोटे मोटे अन्तराय पैदा होते हैं, अनुभवी गुरु उन सभी का निवारण करते हैं और साधक को परमार्थ का भागीदार बना डालते हैं। यदि कोई साधक ऐसे पथप्रदर्शक के बिना अपने आप ही कण्टकाकीर्ण बीहड़ मार्ग से निकल जाना चाहता है तो उसके भटक जाने में कोई भी शंका नहीं करनी चाहिए। इस लिए हमारे आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्थान स्थान पर यह स्पष्ट आदेश दिये हैं कि अमुक साधन एवं अमुक साधनाओं को अनुभवी गुरु की शरण में रह कर ही सीखें। अन्यथा असफलता और गिरावट का भय सदा बना ही रहेगा।

दूसरी श्रेणी में उन गुरुओं का स्थान है जिनके मनोबल से जिज्ञासु के हृदय में स्वतः ही शुद्ध ज्ञान का उदय हो जाता है। साधक को इसका पता ही न हो कि उसके अन्दर यह अतुलित बुद्धि विकास कब कहां से और कैसे पैदा हो गया। भाग्यवान् जीव ऐसे महा पुरुषों का संग प्राप्त कर पाते हैं। इसलिए योग मार्ग में पग पग पर पथप्रदर्शक अनुभवी गुरु की आवश्यकता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त यदि भाग्यवान साधकों को आत्मबल समन्वित पूर्ण सिद्ध शक्तिमान गुरु मिल जायें तो फिर कहना ही क्या ? 'सोने पर सुहागे' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

—※※※—

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु

—※※※—

गुरु शिष्य को एक विशेष शक्ति प्रदान करते हैं, जो शिष्य की बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी कर देती है, जब तक उसे ऐसी अनुभूति न हो तब तक गुरु अनुग्रह का कोई मूल्य नहीं।

जब श्री सतगुरु अनुग्रह कर शिष्य को अपनी शरण में ग्रहण करते हैं तो उनके द्वारा जिस दिव्य अलौकिक शक्ति का शिष्य के अन्दर जागरण होता है उसके आगे संसार के सब सौन्दर्य पदार्थ तुच्छ दीखने लगते हैं। जन्म-जन्म के संचित पापों का भण्डार जो जन्म मरण का कारण बना हुआ है जलकर भस्म होने लगता है। इसीलिए तो सन्तों ने लोगों को गुरु-चरणों में जाने का उपदेश दिया है।

गुरु तत्व और ईश्वर तत्व एक ही हैं जो इनमें दो की भावना करे उसे अन्धा कहना क्या अनुचित है।

गुरु तत्व ज्ञान का तत्व है जब साधक उन्नत होकर सर्वत्र गुरु तत्व को व्याप्त हुआ देखता है तो उसमें समताभाव का उदय होता है।

—श्रुतिसार

ब्रह्मचारी की उन्नति के साधन

[श्री ब्र० सत्यपाल आर्य, एम० एससी०, बासौली]

प्रभु की इस सृष्टि में मानव सब से उत्कृष्ट प्राणी है। वास्तव में एक आत्मा के लिये संसार में मानव जीवन प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है। "जीवनं वै महायज्ञः, तस्य आदौ ब्रह्मचर्यमुपदिश्यते" उपनिषद् के इस उद्घोष के अनुसार मानव-जीवन वास्तव में एक महान यज्ञ है। उस यज्ञ की पूर्ण सफलता के लिये इसके आदि में ब्रह्मचर्य का पालन करना वेदादि सत्यशास्त्रों में अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। मानव जीवन के महान् लक्ष्य (=मोक्ष) की प्राप्ति हेतु "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" का पग-पग पर निर्देश किया है। ब्रह्मचारी ही तो संसार-समर में विजेता होता है। ब्रह्मचारी ही तो मृत्यु को भी दुत्कार सकता है। सारी दिशायें, सारे वेदशास्त्र, सारे ब्रह्माण्ड के प्राणी ब्रह्मचर्य के गीत गा रहे हैं। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड का पांचवां सूक्त सम्पूर्ण का सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य की महिमा बखान रहा है और ब्रह्मचारी की उन्नति के साधनों पर पर्याप्त प्रकाश डाल रहा है। इस छोटे से लेख में मुझे ब्रह्मचारी की उन्नति के साधनों पर कुछ प्रकाश डालना है। आइये अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त पर ध्यान दीजिये, जिस सूक्त का छठा मन्त्र उद्घोष कर रहा है—

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः
कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं
लोकान्त् संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥

अथर्व ११।५।६॥

अर्थात् (ब्रह्मचार्येति) ब्रह्मचारी आता है, ब्रह्मचारी प्रगति करता है, उन्नति करता है, उत्थान की तरफ बढ़ता है, कब? जब वह (समिधा समिद्धः) तेज से प्रकाशित होता है, (कार्ष्णं वसानः) काली-मृगछाला धारण करता है, (दीक्षितः) दीक्षा से दीक्षित होता है, व्रत लेता है, और (दीर्घश्मश्रुः) बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूछ धारण करता है। (स) वह (सद्यः) शीघ्र ही (एति) चला जाता है, पहुँच जाता है (पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रम्) पूर्व समुद्र से लेकर उत्तर समुद्र तक, चारों दिशाओं में (लोकान्त् संगृभ्य) लोक-संग्रह करता हुआ, लोगों को अपना बनाता हुआ, (मुहुराचरिक्रत्) उन्हें बार-बार उत्साहित करता है, प्रेरित करता है, सत्य के सोपान पर आरूढ़ होने के लिये।

ब्रह्मचारी की उन्नति के सोपान पर अग्रसर होने का पहला कदम है-समिधा से समिद्ध होना।

समिधा क्या है ? यज्ञ का ईन्धन। यज्ञ में भी समिधा आवश्यक है, या दूसरे शब्दों में समिधाओं के बिना यज्ञ हो ही नहीं सकता। समिधायें जिस प्रकार हवन-यज्ञ में अत्यावश्यक हैं, उसी प्रकार ही जीवन-रूपी महायज्ञ के लिये ज्ञान की समिधा आवश्यक है। जिस प्रकार यज्ञ में समिधा अग्नि का संसर्ग पाकर स्वयं जलती हैं, प्रकाशित होती है, सुगन्धित द्रव्य का विच्छेदन कर सारे वातावरण में फैलाती है, और साथ ही आस-पास की वस्तुओं को प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचारी का यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपने को ज्ञान-यज्ञ में आहुत कर दे, ज्ञान की भट्टी में अपने को तपा दे। जिस प्रकार सोना अग्नि में तपकर कुन्दन बन जाता है, उसका मूल्य सोने से कई गुणा हो जाता है, इसी प्रकार से ब्रह्मचारी को संसार के ठाठ-बाट-ऐश्वर्य को लात मारकर तपस्या की भट्टी में अपने शरीर को झोंक डालना चाहिये। "इन्द्र महतं तपः" के अनुसार ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में आये कष्टों को सहता चला जाये। तब वह ज्ञान समिधा से देदीप्यमान ब्रह्मचारी जहां अपने आप ज्ञान का सूर्य बन कर उदित होगा, वहां अपनी आलोक की किरणों से अज्ञान की रात्रि में सो रहे प्राणियों को "उत्तिष्ठत जाग्रत" का दिव्य संदेश प्रदान करेगा।

उन्नति के सोपान का दूसरा कदम है— 'कार्ष्णं वसानः' अर्थात् काली-मृगछाला धारण करना। ब्रह्मचारी काला कम्बल ओढ़े। क्यों? जब सारा संसार चटकीले भड़कीले वस्त्र पहनता है, अनेक प्रकार की पोशाक धारण करता है, तो उसी संसार का यह ब्रह्मचारी सफेद भी नहीं काला कम्बल ओढ़े काली-मृगछाला धारण करे ? हां, अवश्य। क्योंकि यह यह भारत भूमि है, ऋषियों की यह पवित्र वसुन्धरा है, जिसके गगन-मण्डल में "सादा जीवन उच्च विचार, उन्नति का यही द्वार" का नारा गुंजायमान होता रहा। जिस धरती के स्वामी रामतीर्थ ने यूरोप में जाकर उद्घोष किया था—

"In Europe, a tailor makes a gentle man, but in India character makes gentleman"

अर्थात् यूरोप की भौतिक सभ्यता में वस्त्र से एक आदमी का मूल्यांकन किया जाता है, और इस कपिल और कणाद की पवित्र भूमि पर व्यक्ति का निर्माण होता है चरित्र और सादी पोशाक से, सादे वस्त्रों से। इसीलिए तो स्व० श्री आत्मानन्द जी महाराज ने मनो-विज्ञान तथा शिव संकल्प' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा है कि—

"सादगी सदाचार की जननी है, तो शृंगार व्यभिचार का दूत।

लेकिन वेद के "कार्ष्णं वसानः" का अर्थ हम दूसरी प्रकार से भी ले सकते हैं। जिस प्रकार से "काली कामरिया चढ़े न दूजो रंग" —काले कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ाया

जा सकता, उसी प्रकार से ब्रह्मचारी को अपने मन को आध्यात्मिकता के तपस्या के उस रंग से अभिषिक्त करना चाहिये कि जिस पर काम क्रोध-लोभ की भयानक भट्टी में धु-धु कर जलते हुए संसार की कोई लहर प्रभाव न कर सके। कहीं ऐसा न हो कि ब्रह्मचारी अपने वास्तविक लक्ष्य को भूलकर विषयों की ओर न बह जावे।

उन्नति के सोपान पर तीसरा कदम है—'दीक्षा' का। वास्तव में दीक्षा जीवन की एक अमूल्य निधि है। ब्रह्मचारी ज्ञान-अग्नि से तेजस्वी भी बना, सादे वस्त्र भी पहने, लेकिन फिर भी जीवन में कोई व्रत नहीं लिया, दीक्षा से दीक्षित भी नहीं हुआ, तो ज्ञान व्यर्थ रहा। क्योंकि "ज्ञान भारः क्रिया बिना"। अतः स्वयं वेद ने भी व्रत और दीक्षा के गीत गाये हैं कि—

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।'

अर्थात् व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है, और दीक्षा से मनुष्य उत्तम गुणों को प्राप्त करता है। तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं।

प्राचीन काल में आचार्यप्रवर के समक्ष ब्रह्मचारी दीक्षा लेता था कि मैं आज से संसार में 'अज्ञान' के नाश करने की शपथ लेता हूं। इसी प्रकार दूसरा ब्रह्मचारी व्रत लेता था कि मैं संसार से 'अन्याय' दूर करके ही विश्राम लूंगा। और तीसरा ब्रह्मचारी व्रत लेता था कि मैं संसार से 'अभाव' को सर्वतोभावेन दूर करूंगा। इस प्रकार से क्रमशः ब्रह्मचारी ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य का वर्ण धारण कर संसार के तीनों शत्रुओं अज्ञान, अन्याय, अभाव को समाप्त करने की दीक्षा लिया करते थे। तभी संसार सुखी था। इसी में ब्रह्मचर्य का वास्तविक रहस्य छिपा हुआ है। दीक्षा-हीन जीवन व्यर्थ है। दीक्षा में ही मानव-जीवन की सफलता निहित है।

उन्नति के सोपान पर चौथा कदम है ब्रह्मचारी का 'दीर्घश्मश्रु' होना। ब्रह्मचर्य की रक्षा-हेतु ब्रह्मचारी को लम्बी-लम्बी दाढ़ी-मूछ रखनी चाहिये। इस बात की महत्ता इसी से समझी जा सकती है कि गुरुकुलों में ब्रह्मचारी के लिये "अश्मश्रुर्व वर्तय" का उपदेश किया है। ब्रह्मचारी की वृद्धि अवस्था में दाढ़ी-मूछें एवं सिर पर शिखा काम जैसे भयंकर शत्रु का वार रोकने में ढाल का काम करती है। विदेशी विद्वानों तथा डाक्टरों ने भी अपने अनुभवों के आधार पर इस बात की पुष्टि की है। लेकिन आज का विद्यार्थी, विद्या-जिज्ञासु "विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्" के दिव्य संदेश को भुलाकर स्वयं ही अपनी शिक्षा और उस्तरे से बाल बनवा फैशनेबिल होता जा रहा है। मुख पर क्रीम, पाउडर का लेप कर वह अपनी जननी-जन्मभूमि की अवहेलना कर रहा है। लार्ड मैकाले का स्वप्न आज साकार हो उठा है। लार्ड मैकाले ने लिखा था।

"English education weuld trainup a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, in moral and intelect"

अर्थात् अंग्रेजियत ने इस देश की सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात कर उसे पतन की गर्त में गिराया है। आज भी यदि मेरे देश के कर्णधार न चेते और।

जारी रहा क्रम यदि,
यों ही हमारे नाश का।
तो अन्त समझो सूर्य,
भारत-भाग्य के आकाश का॥

अतः मेरे देश के नवनिर्माताओ! कर्णधारो! विद्या-जिज्ञासु ब्रह्मचारियों! आओ, इस देश की उन्नति का स्वप्न साकार करने, वेद के पावन-पथ पर आगे बढ़कर अपनी उन्नति करने। जलाओ अपने इस जीवन-दीप को ज्ञान-तपस्या के तेल से और दीक्षा की पावन बत्ती से। और फैलाओ ज्ञान की आलोकमयी किरणों को जिससे अज्ञान के बादल छिन्न भिन्न हो जायें। पूर्व से लेकर उत्तर समुद्र तक चारों दिशाओं में फैलो ज्ञान की दिव्य ज्योति को लेकर। सारे संसार को एकत्र करके लोगों को बार बार उत्साहित करके उन्हें आलोक-मयी आभा से देदीप्यमान करदो। बढ़ चलो वेद पथ पर और गूँज उठे इस वसुन्धरा के गगन मंडल में फिर से—दैवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति का जयनाद। (वेदवाणी से साभार)

जिस प्रकार सारे विश्व को हम एक छोटे से नक्शे पर साफ साफ देखते हैं उसी प्रकार हमारे हृदय में रखे हुए पिण्ड और ब्रह्माण्ड के नक्शे को यदि हमने देख लिया तो हमें वायर लैस का सही स्टेशन मिल जायगा और ब्रह्माण्डाधिपति से हमारी सीधी बात चीत होने लगेगी। प्रत्येक प्राणी विश्व वाटिका का सुन्दर फूल है। यदि वही काँटा बन कर इस उपवन को बिगाड़ता है तो पाप करता है। प्रत्येक साधक अपनी साधना द्वारा संसार को स्वर्ग बना सकता है इसके लिए संतों और योगियों की जीवन गाथायें हमेशा हमारा मार्ग दर्शन करती रहेंगी।

—नारायणदत्त रावल

मेरा प्रणव नादानुभव

[श्री ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य, जम्मू (काश्मीर)]

[तपोमूर्ति ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य का प्रस्तुत लेख उनके अपनी निजी साधना के अनुभूत प्रयोग का तथ्यपूर्ण विवरण है 'सिद्धयोग' के पाठक इस लेख से पर्याप्त मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकेंगे ऐसी आशा है। सं० सम्पादक]

—※—

अध्यात्मतत्त्वानुसन्धानकर्त्ताओं से अपनी वार्ता अवगत होने के लिये श्री सद्गुरुदेव अनन्त श्री विभूषित योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की आज्ञानुसार लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। सन् १९५० ईस्वी में हरिद्वार ब्रह्मकुण्ड पर प्रातः ४ बजे कमलावनी श्री अमृत सुरसरी गंगा जी में ब्रह्ममुहूर्त का स्नाना-वगाहन करके आसन लगाकर 'हरकी पौड़ी' पर ही आसन शुद्धि करके ध्यानमग्न होकर श्री गायत्री जप करना आरम्भ किया। श्री वेद-व्यास जी ने सृष्टि वर्णन में लिखा है कि सृष्टि के आदि में आदि सदाशिव ने सर्व प्रथम समस्त वेदमन्त्रों के मूल मन्त्र गायत्री मन्त्र को सुना और तेजः स्वरूप में देखा।

गायत्री महिमा में बताया है कि पापनाश विनाश के लिए गायत्री वेद माता से बड़ा और कोई मन्त्रयोगानुष्ठान नहीं है। प्रातः से १ बजे पर्यन्त पांच हजार प्रतिदिन जप करने लगा। गायत्री मन्त्र के अर्थ में भाव रखते हुए जप करने से शीघ्रातिशीघ्र सफलता होने लगी। अनेकार्था हि शब्दाः, प्रत्येक शब्द के अनेकार्थ हो सकते हैं। जब तत्त्व दृष्टि की अवस्था आती है तब ऐसा अनुभव हुआ कि प्रत्येक शब्द का अर्थ शुद्ध ब्रह्म सत् चिद् आनन्दघन आत्मा ही है। श्री गायत्री जप करते हुए जिस अर्थभाव का मुझे आनन्द आता आपकी जानकारी के लिए लिखता हूँ।

गायत्री मन्त्र का अर्थ मेरी भावनानुसार:—

सारी सृष्टि का मूलभूत उत्पत्तिस्थान सत् तत्त्व (सदैव रहने वाला), सर्व चेतनाओं को परम चेतना प्रदान देने वाला चिद् चेतन तत्त्व। अखिल आनन्द और समृद्धियों को समृद्धा-नन्दित करने वाला आनन्दघन तत्त्व अर्थात् सत् चिद् आनन्द घन मय सृष्ट्युत्पादक ईश्वर के सच्चिदानन्दघन मय तेज का ध्यान करता हूँ। जो तेज मेरे अनन्त जन्मों के दुःख स्वरूप सम्पन्न संस्कारों को जलाकर मेरे अन्दर अपना प्रभाव भर रहा है। इस तेज से आकर्षित समस्त प्राणी इसी आनन्दमय तेज को वरण (प्राप्त) करना चाहते हैं। प्राणीमात्र की बुद्धियों के अन्दर यही तेज प्रेरणा दे रहा है। माला का एक दाना छोड़ते प्रतीत होने लगा कि एक एक मन्त्र से अनेकानेक जन्मों के पूर्वार्जित संस्कार ज्ञानाग्नि में दग्ध होकर उसी तेज में विलय होते जा रहे हैं।

प्रतिक्षण आनन्द की खुमारी बढ़ती जाती। उन दिनों मेरा आहार था—तीन तोले चावल, तीन तोले चने-मूंग तीन तोले गेहूँ यह चारों

रात को पानी में भिगो देना। प्रातः घोंट कर घी में भून कर दूध डालना उबलने पर दो तीन बजे के अन्दर केवल दिन को सेवन करना।

इसी प्रकार कुछ दिन साधनानुभव दिव्य दर्शन, शरीर का हल्कापन सूर्य-चन्द्राग्नि का अनुपमातीत तेजोमण्डल का रोम-रोम में संस्पर्श होना। कभी-कभी सूर्यमण्डल के आकर्षण से सूर्यावलम्बित शरीर का अनुभव होना। गायत्री मन्त्र विद्युल्लता के समान तेजोमय आकाश में दिखाई देना। प्रथम जिह्वा से मन्त्र चलता रहा। कण्ठ से चलने लगा। हृदय से भी चलने लगा। जब नाभि से चलने लगा तो गर्मी बढ़ गई और शरीर के अन्दर की नस-नस दिखाई देने लगी। शीतली प्राणायाम से गर्मी शान्त हो गई।

स्वाधिष्ठान चक्र से जब मन्त्र चलने लगा तो ऐसा प्रतीत होने लगा अन्न, प्राण मन और बुद्धि मय कोष को पार कर लिया है। परन्तु आनन्द कोष को पार करना कठिन है। इतना आनन्द आने लगा कि आनन्द से स्वाधिष्ठान चक्र में झनझनाहट वीणा के तार के समान झंकार उठती और ऊपर चढ़ती चेतना को भी ऊपर लेजाये और जप बन्द हो जाय। फिर केवल चावल मोन तोले उबाल कर दूध के साथ बिना मीठे नमक के सेवन करने से मूलाधार चक्र से मन्त्र चलने लगा। अब मन्त्र बन्द न हो दिन रात सोए हुए भी मन्त्र चलने लगा। फिर चित्त में विचार आया कि इस मन्त्र में द्वैत भाव है। मैं जप कर रहा हूं उस ईश्वर के तेज का जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा दे रहा है। ईश्वर बड़े कृपालु हैं मैं कब तक जप करूंगा और इस संस्कारमय संसार में चक्र काटता रहूंगा।

उस दिन प्रार्थना करी। श्री प्रभु आप मुझे इस अपनी किरण को अपने में मिला लो। क्योंकि मुझे इस संसार में तथा दिव्यलोकों में किसी प्रकार की लालसा नहीं है। चालीस दिन का अनुष्ठान था। ३५ वें दिन जप करने बैठा तो प्राणायाम भस्त्रिका होने लगी। मूलाधार चक्र में बिजली जैसी चमकी और करोड़ों मनका पटा जोर से बजा और वह लम्बा शब्द मूलाधार रीढ़ की हड्डी के अन्दर से ग्रन्थियों पर टकराता और प्राणों को साथ ही साथ अपने साथ विलय करता हुआ सहस्रार बिन्दु में पहुँचा। तीनों बन्ध स्वयं लग गये। गुदा चक्र जोर से बन्द हो गया। पेट अन्दर चला गया। ठोडी गले से मिल गई। मस्के पीछे गहरा स्थान मेघ मण्डल की हड्डी सीधी हो गई। जिह्वा आनन्द से खिसककर कौवे के पीछे से ऊपर चढ़ गई। घण्टे की लम्बी ध्वनी ने अपने आनन्द से शरीर चकनाचूर कर दिया। रोम-रोम से प्राण खींच कर उस शब्द ब्रह्म ने ब्रह्म बिलके ऊपर अन्दर वाले तालू को ठोकर मारी। ब्रह्म बिल खुला। जिह्वा को इतना आनन्दमय बिन्दु प्राप्त हुआ कि वह आनन्द सहन नहीं हो सकता था। तत्काल खोपड़ी की हड्डी के अन्दर अनन्त तेज नील वर्ण का भर गया। उस शब्द ब्रह्म ने खोपड़ी की हड्डी को ठोकर मार खोल दिया और स्थूल सूक्ष्म

कारण तीनों शरीर सहित मुझे अपने में लीन करता वह शब्द ब्रह्म सूर्यमण्डल से बाहिर चला गया। अब केवल शब्द ब्रह्म ही था दूसरा कोई तत्त्व नहीं था। मूलाधार से ऊपर जाते ही मेरुदण्ड में उस समय अनुभव होने लगा कि सृष्टि चक्र मेरा शरीर है। शरीरात्मक सृष्टि हृदय तेज में लीन हो गई है। तदनन्तर एक ऐसा आनन्द का नशा जैसा श्याम वर्ण का अनन्त तेज फैल गया। वह तेज छोटा होता शून्य बिन्दु खसखस के दाने के समान अनुभव में आया। और एक ॐकार का महान नाद प्रकट हुआ। उस समय अपना आप अनन्त असीम अनवरत नाद स्वरूप ही था। शरीर का आभास नहीं था।

वह नाद अब कम होने लगा और प्रातः कालीन सूर्यमण्डल के अन्दर एक नील तेज बड़ा आनन्द मय प्रतीत होता है। उससे भी अतिशय आनन्द दायक हीरे की तरह अवर्णनीय ज्ञान सत्ता प्रकट हुआ। अपना आप अनन्त अखण्ड शुभ्र तेज स्वरूप परम शान्त भाव में अनुभव हो रहा था। इसके बाद एक ऐसा ज्ञानानन्द का सागर भी—नहीं आकाश सदृश चिदाकाश प्रकट हुआ। जिसका वर्णन इस संसार के किसी पदार्थ से तुलना नहीं खा सकता। और आन्तरिक अनुभवों में भी वैसा पदार्थ मुझे आज तक उनके बिना अन्य रूप में अनुभव में नहीं आया।

उस अवस्था का वर्णन किस से करूं। वहां इन्द्रियां मन बुद्धि और चित्त जीव भाव यह सब कुछ नहीं था। उस अवस्था में कोई वासना (कामना)-इच्छा, क्रिया (चेष्टा) ज्ञान यह कुछ नहीं था। केवल अनन्यभाव से वही अपना आप था। वह सत् चित् आनन्द घन कहां तक फैला हुआ था, वह आकाश जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्डाकाश विलय हो सकते परन्तु इसकी सीमा नहीं थी। उसके खण्ड विभाग नहीं थे। निस्पन्द था। कोई लहर नहीं थी। अन्धकार नहीं था। प्रकाश की तीव्रता नहीं थी। तेज में हलचल नहीं थी। अपने आप में ही शुभ्र था। निजानन्द का आदि अन्त छोर नहीं था। अचल विमल असीम अनन्त एक अपरिवर्तनशील ज्ञान-प्रशम परिपूर्ण निरन्तर उत्तरोत्तर आनन्द परिवर्द्धन स्वरूप था। तत्क्षण प्राण नीचे उतरने लगे। कान में सुनाई दिया उठो हरकी पौड़ी साफ करनी है। वहां आज पण्डों की सभा है। समय दिन का एक बज चुका था। उस दिन जप बिलकुल नहीं हुआ। चित्त में अन्तः प्रेरणा हुई। जिसका जप करते थे। वहीं पहुँच कर जप करने की आवश्यकता नहीं होती। प्राप्तव्य वस्तु का नाम लेकर तभी तक पुकारा जाता है जब तक वह वस्तु मिलती नहीं।

श्रीमद् भागवत् में पढ़ा था आज उसका तत्त्वार्थ अनुभव हुआ। योगेश्वर श्रीकृष्णानन्द-कन्द प्रातः स्वरूप ध्यानस्थ हो जाते थे—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय,
वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्न करण-
मात्मानं तमसः परम्॥
एकं स्वयं ज्योतिरनन्यमव्ययम्।
स्व संस्थया नित्य निरस्त कल्मषम्।

त्रस्तानस्य मस्योद् भव नाशहेतुभिः
स्वशक्तिभिर्लक्षित भाव निर्वृ तम् ।।

अर्थात्—प्रातः तीन बजे ब्राह्म मुहूर्त में परमानन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र भगवान शय्या से उठ कर हस्त मुख पाद प्रक्षालन कुल्ला करके ध्यानस्थ हो जाते। अपने आपको ही प्रसन्न करने वाले अपने ही आत्मस्वरूप का ध्यान कर अपने अनन्त असीम आनन्द स्वरूप में मुग्ध हो जाते। स्वयं एक ज्योति अनन्य अविनाशी अपनी स्थिति से अन्धकार मय क्षेत्र को सदा के लिये दूर किये हुए रहते। सृष्टि स्थिति और विनाश कारक ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामक शक्तियों की भावना से ऊपर व्यापक ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो जाते थे।

वेदव्यास जी में श्री कृष्ण जी का आवेश हो जाता था। लिखते समय श्री गणेश जी में भी श्रीकृष्ण जी का आवेश हो जाता था। श्रीकृष्ण जी ने ही श्री गणेश जी का स्वरूप धारण किया था। यदि स्वयं उस स्थिति में हो जाये तो आनन्द से भरपूर हो जाता। लिखने की सामर्थ्य नहीं रहती। जगत्कल्याण के हेतु वेदव्यास जी और श्री गणेश जी से श्रीमद्-भागवत् लिखवाया।

इस परम स्थिति में पहुँचने से पूर्व जो अनुभव हुए वह भी शास्त्र संगत थे। पाँच हजार वर्ष पूर्व श्रीनगर काश्मीर में एक शक्तिपात पालक योगकुण्डलिनी के सिद्धयोगी धर्माचार्य जी हुए। उन्होंने अपनी "पञ्च स्तवी" नामक श्रीदुर्गा स्तुति में लिखा, जो मैंने पढ़ा तो प्रतीत हुआ कि अनुभव उचित ही हुआ है। पीत कुण्डल्युत्थान की सीढ़ी—

जगत्काये कृत्वा तदपि,
हृदये तच्च पुरुषे।
पुमांसं बिन्दुस्थं तदपि,
परनादाख्य गहने ।।
तदेद् ज्ञानाख्ये तदपि,
परमानन्द विभवे।
महाव्योमाकारे त्वद-
नुभव शीलो विजयते ।।

—धर्माचार्य

अर्थात् हे शक्ति कुण्डलिनी देवी! जब आप किसी भक्त योगी के कल्याणार्थ जागृत होती हो तो उस समय अपने शिशु योगी को अपनी गोदी में उठालेती हो। उस योगी को अनुभव होता है कि सारा जगत् मेरा ही शरीर है। निज शरीर रूपी जगत् मेरे हृदय में लीन हो रहा है। और हृदय श्याम वर्ण के परम पुरुष तत्त्व में लीन हो रहा है। जिस प्रकृति पुरुष का वर्णन महर्षि कपिलदेव मुनि ने सांख्य दर्शन में किया। उस पुरुष तत्त्व में प्रकृति लीन हो जाती है। फिर वह पुरुष तत्त्व भी घटता घटता बिन्दु रूप होता। और प्रणवनाद बढ़ता-बढ़ता अनन्त परम गहन नाद हो जाता। बिन्दु भी उसी में विलीन हो जाता। दोनों भावाभाव एक साथ होते। तदनन्तर नाद कम होता-होता ज्ञान तत्त्व में बदलता जाता। नाद शून्य हो जाता। ज्ञान भी अनन्त असीम चेतनानन्द स्वरूप में प्रतीत होता। तदनन्तर-

परमानन्द तत्त्व कहा जाता जीव तत्त्व शून्य हो जाता। वह सच्चेतनानन्दघन महान् व्योमाकार में अनन्त आनन्दानुभव में फैल जाता। हे कुण्डलिनी शक्ति! आप मिक्षुरूप योगी को अपने हृदय में लेकर महान् परमानंद में पहुँचा देती हो। आपके जागरण का अनुभव करने वाला योगी सर्व विजयी हो जाता है। आप की महिमा अपार है।

दूसरे पद में कुण्डलिनी का स्वरूप वर्णन किया वैसा ही अनुभव में आया:—

या मात्रा त्रपुसीलता तनु,
लसत्तन्तु स्थिति स्पर्धिनी।
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव,
सदा तां मन्महे ते वयम्॥
शक्ति कुण्डलिनीति विश्व
जनन व्यापार बद्धोद्यमा।
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति
जननी गर्भेऽर्भकत्वं नराः॥

अर्थात् अति सूक्ष्माति सूक्ष्म पीतल की तार के समान बारीक कमल दण्ड कुटिल तन्तु की नांई, मूलाधार चक्र में वाणी के बीज स्वरूप में स्थित रहने वाली, कुण्डलिनी शक्ति आपका हम योगी जन मनन करते हैं। मुख में वैखरी वाणी, कण्ठ में मध्यमा वाणी, नाभि में पश्यन्ती वाणी और मूलाधार चक्र में परावाणी के स्वरूप में स्थित रहने वाली सरस्वती कुण्डलिनी शक्ति! आप विश्व की रचना करने में परम पुरुषार्थ युक्त रहती हो। मूलाधार चक्र से चक्र भेदन करती हुई आप सहस्रार बिन्दु में पहुँचती हो। और सहस्रार बिन्दु से ऊपर उठकर सूर्यमण्डल से बाहिर ब्रह्माण्ड चक्र भेदन करती पर ब्रह्मानंद में मग्न हो जाती हो। आपका ऐसा अनुभव करने वाला योगी आप जैसी माता के हृदय में विलीन हो जाता है तब पुनः सांसारिक माता के गर्भ में आने एवं कष्ट पाने की आवश्यकता नहीं रहती।

पूर्वोक्त अनुभव के अनुसार योग दर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण महाभाष्य में लिखा है:—

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द,
ब्रह्म परं च यत्।
शब्द ब्रह्मणि निःस्नातः
परं ब्रह्माधि गच्छति॥
अनादि निधनं ब्रह्म,
शब्द तत्त्वं यदक्षरं।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया,
जगतो यतः॥

अर्थात्—ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। एक शब्द ब्रह्म है जो दीर्घ प्रणव अनाहत स्वरूप से प्रतिक्षण प्रति अणु-अणु के अन्दर निरन्तर ध्वनिशील स्वभाव से प्रवाहित हो रहा है। उसी से सृष्टि होती है। और प्रतिक्षण प्रति परिवर्तनशील जगत् संसार उसी में विलीन हो रहा है। संसार में शब्द के बिना कार्य नहीं चल सकता। वस्तारोन्मुख पर ब्रह्म में भी शब्द ब्रह्म की परम आवश्यकता है। शब्द ब्रह्म में निःस्नात होकर जीव परब्रह्म को प्राप्त हो सकता है।

पूर्वोक्त अनुभव को उपनिषदों के अन्दर भी उचित पाया:—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा,
ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं,
शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात्—बड़ी सावधानी से ॐकार स्वरूप धनुष पर जीवात्मा स्वरूप बाण को कस कर छोड़े कि मूलाधार से दसों प्राण सहित छूट कर षट्चक्र और ब्रह्म रन्ध्र तथा सूर्यमण्डल एवं ब्रह्माण्डचक्र का भेदन करता हुआ परब्रह्म में तन्मय होकर उसी में विलीन हो जाय। जीव भाव न रहे।

उपरोक्त अनुभव के अनुसार श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म,
व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं,
स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात्:—पूर्वोक्त ब्रह्म प्रणव नादानुसंन्धान करने वाला योगी यदि शरीर छोड़ते समय ब्रह्म प्रणवनादानुसन्धान की प्रक्रिया से मूलाधार से नादानुप्राणित दसों प्राणों सहित, चक्र भेदन करता हुआ दशम द्वार से बाहिर जाकर सूर्यमण्डल ब्रह्माण्ड भेदन करता हुआ तीनों (स्थूल सूक्ष्म कारण) शरीर इधर ही छोड़ता हुआ जाता है तो वह परम प्रमाणित सर्वोच्च गति को प्राप्त हो जाता है। योगी जब ध्यान में बैठते हैं तो पुनः शरीर में आने की भावना नहीं होती। परन्तु संसारोपकार के लिये वापिस भेजे जाते हैं अप्रकाशित उपनिषदों में लिखा है—

यस्मिन्नोतं जगत्सर्वं,
वाङ्मयं सचराचरम् ।
ओंकाराय नमस्तस्मै,
शुद्धाय त्रिगुणाय च ।
अथवा च शुद्ध रूपं वै,
मात्राभिस्त्रिगुणात्मकम् ।
द्विरूपमेक रूपं च,
तमोंकारं न तोऽस्म्यहम् ॥

अर्थात्-जिसमें साराजगत् ओत-प्रोत है त्रिगुणित ॐ और शुद्ध ब्रह्म ॐ कार को नमस्कार है। अकार से मकार पर्यन्त अन्तस्थ संयुक्त अक्षर जिससे प्रकट होते है उस ॐ कार को नमस्कार है।

महर्षि पतञ्जलि जी ने योग समाधि सिद्धि के लिये ईश्वर प्रणिधान से सर्वेश्वर का आदि अनादि नाम ॐकार बतलाया है:—

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थं भावनम्। ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥

पातञ्जल योग दर्शन के समाधिपाद के इन तीन सूत्रों के अन्दर बतलाया है कि सर्वेश्वर का वाचक नाम ॐ है। इसका जप करना और साथ-साथ सृष्टि संचालक माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वर संप्राप्ति की भावना करना। इससे उपासनात्मक क्रिया योग से विघ्नों का नाश होगा और सर्वोच्च शक्ति सर्वज्ञ ईश्वर तत्व की संप्राप्ति होगी। आत्म आत्म सम्प्राप्ति के लिये अनुशासित मार्ग दर्शक है। अतः अपना अनुभव शास्त्र संगत करते जाना चाहिये। लिखना भी चाहिये क्योंकि ऋषि मुनियों ने अपने अनुभव न लिखे होते तो हमारी जिज्ञासा भी नहीं बनती।

क्रि—श्रि

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

[श्रीमद्भागवद् से]

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।
किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥

तितिक्षु पुरुष क्या नहीं सह सकते । दुष्ट पुरुष बुरे से बुरा क्या नहीं कर सकते । उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते । और समदर्शी के लिये पराया कौन है ? अर्थात् कोई नहीं ।

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ।
नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥

जो मनुष्य स्वयं समर्थ होकर भी इस नाशवान शरीर से ऐसे अविनाशी यश का संग्रह नहीं करता जिसका बड़े बड़े सत्पुरुष भी गान करें, सत्पुरुषों को उसकी जितनी भी निन्दा की जाय कम है । उसका जीवन शोक करने योग्य है !

सा वाग यया तस्य गुणान गृणीते, करौ चतत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद वसन्तं स्थिर जङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्य कथाः स कर्णः ॥

जो वाणी भगवान के गुणों का गान करती है वही सच्ची वाणी है । वे ही हाथ सच्चे हाथ है जो भगवान की सेवा के लिये काम करते है वही मन सच्चा मन है जो बराबर प्राणियों में निवास करने वाले भगवान का स्मरण करता और वे ही कान वास्तव में कान कहने योग्य है जो भगवान की पुण्यमयी कथाओं का श्रवण करते है ।

विकल्पे विद्यमानेपि न ह्यसंतोष हेतवः ।
पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निज कर्मभिः ॥

वास्तव में मनुष्य के असन्तोष का कारण मोह के सिवाय और कुछ नहीं है । संसार में मनुष्य अपने कर्मानुसार ही मान अपमान या सुख दुःख आदि को प्राप्त होता है ।

परि तुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ।
दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वर गतिं बुधः ॥

तात ! भगवान् की गति बड़ी विचित्र है । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि दैव वश उसे जैसी भी परिस्थिति का सामना करना पड़े उसी में सन्तुष्ट रहे ।

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतना हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥

जो विषय चिन्तन में लगे रहते है उनकी इन्द्रियां विषयों में फंस जाती हैं तथा मन को भी उन्हीं की ओर खींच ले जाती है । फिर तो जैसे जलाशय के तीर पर उगे हुए कुशादि अपनी जड़ों से उसका जल खींचते रहते हैं उसी प्रकार वह इन्द्रियासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति को क्रमशः हर लेता है ।

भ्रश्यत्यनु स्मृतिश्चित्तं ज्ञान भ्रंशः स्मृतिक्षये ।
तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥

विचार शक्ति नष्ट हो जाने पर पूर्वा पर की स्मृति जाती रहती है और स्मृति का नाश होने पर ज्ञान नहीं रहता । इस ज्ञान के नाश को ही पंडित जन अपने आप अपना नाश करना कहते हैं ।

अर्थेन्द्रियार्थाभि ध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञान विज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥

मन और इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करना मनुष्य के सभी पुरुषार्थों का नाश करने वाला है । क्योंकि इनकी चिन्ता से वह ज्ञान और विज्ञान से भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियों में जन्म पाता है ।

अर्थोऽप्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
मनसा लिङ्ग रूपेण स्वप्नेविचरतो यथा ॥

जिस प्रकार स्वप्नावस्था में अपने मनोमय शरीर से विचरने वाले प्राणी को स्वप्न के पदार्थ न होने पर भी भासते हैं उसी प्रकार यह दृश्य पदार्थ वस्तुतः न होने पर भी जब तक अज्ञान निद्रा नहीं टूटती बने ही रहते हैं और जीव को जन्म-मरण रूप संसार से मुक्ति नहीं मिलती । (अतः इनकी आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय एक-मात्र आत्म ज्ञान ही है ।)

दो गद्यगीत— ❀ [श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया]

[श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया के गद्य-गीत हिंदी में सर्वोत्कृष्ट गद्य-गीत माने जाते हैं। आपकी चिन्तन नामक कृति से दो गद्य-गीत हम सादर पाठकों को प्रेषित कर रहे हैं। सं० सम्पादक]

एक ही मुद्रा के दो पहलू

महाकाल के मन्दिर के गुम्बज पर चढ़ कर

मैंने अनगिनित महाराष्ट्रों और साम्राज्यों के खण्डहरों को दूर तक फैले देखा;

क्रान्ति के अंधड़ को युगों की विचार-सरणियों के विध्वंसों को सर्वत्र पतझड़ के पीले पत्तों की तरह छितराते देखा; और महाद्वीपों को धूर्जटी के डमरू नाद के साथ ही समुद्र के अतल तल की ओर बढ़ते देखा; और,

देखा प्रागों, प्रणयों और हूतों के अवशेषों के साथ ही दुःख की मरुस्थली में वासंती गुलाबों को फिर से लहलहाते; और हिरण्यगर्भ को अंधकार से लौटते;

किन्तु आज प्रलयंकर विनाश के भयंकर दृश्य पर भी मेरी चेतना मन्द-मन्द हंसती है क्योंकि विवेक मेरे कान में कहता है कि सृजन और संहार एक ही मुद्रा के दो पहलू हैं!

❀

ज्ञान का दीपक

काल मार्ग का अतिक्रमण करते-करते जब दिग्भ्रान्ति को दूर करने के लिये मैं ज्ञान का दीपक जलाती हूँ तो व्यष्टि और समष्टि के भेद की संकीर्णता मिट जाती है;

जड़-तंद्राग्रस्त प्राणों का मोह-ममत्व नहीं रहता; पंचकोषों के आवरण को चीर कर जब आत्मा अपने ही प्रकाश में कोटि सूर्यों की प्रभा सी उद्भासित हुई, तब पृथ्वी पर के पापों का अंधकार भभक-भभक कर बुझ गया, और,

मानव के षड्रिपु-उलूक दावानल में दग्ध हो गये,

अप्सराओं ने आनन्द की भैरवी अलापी और मर्त्यलोक में ईश्वरीय राज्य की स्थापना हुई!

सरसों के तेल में लाश खराब नहीं होती। सात दिन के बाद जब बादशाह बोलने लगे तो उन्हें बताया गया कि लाश को दफनाया नहीं गया है, लकड़ी की नाव में सरसों का तेल भरके उसे रख दिया गया है। क्योंकि सुना यह गया है कि बहुत से फकीर मुरदे को जिन्दा कर देते हैं। बादशाह ने अपने सब वजीरों को इकट्ठा किया और एक एक लाख रुपया उनको सफर खर्च के लिये दिया और सब देशों को रवाना किया कि ऐसे फकीर को ढूंढकर लायें जो मुर्दे को जिन्दाकर सके। साथ ही यह भी हिदायत कर दी कि यदि उनमें से कोई फरार हो गया तो उनके बाल बच्चों को कत्ल कर दिया जायगा। भारतवर्ष के लिए जिस वजीर की ड्यूटी लगी उसका नाम फैजी था। उस समय भारतवर्ष में सम्राट अकबर का शासन था। फैजी ने दरबार में हाजिर होकर सारी दास्तान सुनाई। अकबर ने बीरबल को बुलाकर उससे पूछा क्या तुम किसी ऐसे फकीर को जानते हो जो मुर्दे को जिन्दा कर सके। बीरबल ने कहा मैं ऐसे तीन महापुरुषों को जानता हूं जो कि मुर्दे को जिन्दाकर सकते हैं। इनके अलावा और भी बहुत से कामिल फकीर होंगे जिनको मैं नहीं जानता हूँ चूंकि भारतवर्ष रूहानी इल्म में सबसे ऊंचा स्थान रखता है इसलिए यहां मारने वाले व जिलाने वाले फकीर मिलते हैं। अकबर बादशाह ने उन तीनों फकीरों के नाम व मुकाम बयान करने को कहा जो कि मुरदे को जिन्दा कर सकते हैं। बीरबल ने जवाब दिया १–वृन्दावन के महात्मा सूरदास जी २–अयोध्या के महात्मा तुलसीदास जी। ३–काशी के महात्मा कबीरदास जी। इन तीनों महापुरुषों में यह शक्ति है कि मुरदे को जिन्दा कर सकते हैं। बादशाह ने बीरबल को हुक्म दिया मेरी तरफ से इन तीनों महापुरुषों को सिफारशी पत्र लिख दो और फैजी को रवाना कर दो। इनके साथ कुछ अपने आदमी भेज दो ताकि इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। चूंकि आगरा से वृन्दावन नजदीक पड़ता था इसलिए फैजी पहले सूरदास जी से जाकर मिले और उनको अकबर का सिफारशी पत्र पढ़कर सुनाया। सूरदास जी ने उत्तर दिया। ब्रजमण्डल की भूमि ८४ कोस के दायरे में है मैंने यह प्रणकर रखा है कि इस दायरे को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा यदि तुम यह कर सको कि अरब के शहजादे को यहां ला सको तो भगवान कृष्ण की दया से उसे जिन्दा वापस ले जा सकते हो। उस जमाने में

कबीर साहब का चमत्कार

[श्री शिवराम सांगर, एल.आई. टी टूण्डला]

भारतवर्ष में कौन सा ऐसा समझदार व्यक्ति होगा जो कबीर साहब के नाम से परिचित न हो। कबीर साहब अपने समय में उच्च कोटि के योगी प्रख्यात थे। संत मत के दाता भी वही थे। उनकी कृपा से ही दादू पंथ, नानक पंथ, कबीर पंथ आदि लोगों के सामने आये तथा उन्हीं की अनुकम्पा से लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों का उद्धार हुआ। भारतवर्ष प्रारम्भ से ही योग का केन्द्र रहा है बड़े-बड़े महान योगी इस भूमि पर आये जिन्होंने अपने अद्भुत चमत्कारों से दुनियां को अंधेरे से लाकर उजाले में खड़ा कर दिया। योगियों ने अधिकतर इसी भारतभूमि पर अपने चमत्कार दिखलाये हैं लेकिन कबीर साहब एक ऐसे महान योगी हुये हैं जिन्होंने भारतवर्ष से बाहर जाकर भी योग का डंका बजाया। यह कथा जो कबीर साहब के चमत्कार के बारे लिखी जा रही है एक सच्ची घटना है। यह कोई कल्पित कहानी नहीं है। वरन् एतिहासिक घटना है, जिसे अकबर बादशाह के वजीर फैजी ने जो कि उनके नौ रत्नों में से थे अपनी हस्त-लिखित पुस्तक में लिखा है।

कथा इस प्रकार है कि अरब के बादशाह के एकलौता बेटा था उसके अलावा उसके कोई अन्य संतान न थी, वह लड़का अति सुन्दर तथा बुद्धिमान था चौदह पन्द्रह वर्ष की आयु में उसने पूरी कुरान शरीफ को याद कर लिया था इसलिये बादशाह व बेगम बड़ी प्रसन्नता से उसे हाफिज के नाम से पुकारती थीं अचानक वह बीमार हो गया। बड़े इलाज आदि कराने के पश्चात् भी वह बच न सका और उसकी मृत्यु हो गई। पूरी सल्तनत में कोहराम मच गया। बेगम पागल हो गई और बादशाह सात दिन तक खामोश रहा। एक समझदार वजीर ने उस लड़के के शव को दफनाने नहीं दिया। उसे काठ की नाव में सरसों का तेल भरकर रख दिया। कहते हैं कि

उस नाव को लाश समेत यहां लाना एक कठिन समस्या और उलझन सी बात थी। फैजी वहां से निराश होकर अयोध्या जा पहुंचे और तुलसीदास जी को अकबर का सिफारशी पत्र दिया। तुलसीदासजी ने उत्तर दिया—मेरी जिन्दगी एक हिन्दू जिन्दगी है मेरे खाने पीने का सिलसिला अरब जैसे मुसलमानी देश में नहीं निभ सकता। अगर तुम उस मुर्दा लड़के को यहां ले आओ तो हमारे श्री सीता राम जी इस काम के काबिल हैं और आपका कार्य पूरा हो जायगा। फैजी वहां से भी निराश होकर काशी पहुंचे। कबीर साहब से मुलाकात हुई। उनको अरब का किस्सा भी सुनाया तथा अकबर का सिफारशी पत्र भी दिया और जो-जो बातें संत सूरदास व संत तुलसीदास जी से हुई थीं वह भी कह सुनाईं। इस पर कबीर साहब ने उत्तर दिया कि मेरे लिये ब्रह्मण्डल की कोई शर्त नहीं और यह भी शर्त नहीं कि किसी मुसलमान देश में नहीं जा सकता। ऐसी कोई भी पाबन्दी मेरे रास्ते की रुकावट नहीं है। चलिये मैं आपके साथ अरब चलता हूं। कई महीनों का सफर तै करने के बाद फैजी कबीर साहब को लेकर अरब पहुंचे। अरब के बादशाह ने जब देखा फैजी के साथ एक फकीर दरबार में चला आ रहा है तो तख्तशाही से उतरकर जमीन पर खड़ा हो गया। कबीर साहब की बड़ी आव-भगत की गई और शहजादा की लाश लाकर उनके सामने रखदी गई। जब शहजादे की लाश सामने रख दी गई तो कबीर साहब ने दोनों हाथ आसमान की तरफ उठाकर कहा खुदा के नाम से उठ मगर शहजादा जिन्दा न हुआ। दूसरी दफा उन्होंने कहा उठ कुदरत के हुक्म से तब भी शहजादा जिन्दा न हुआ। आखिरकार कबीर साहब ने कहा उठ, मेरे हुक्म से। शाहजादा फौरन जिन्दा हो गया। बाद-शाह ने अपने पुत्र को सीने से लगा लिया। पूरे शहर में खुशियां ही खुशियां छा गईं। शहजादे को बेगम के पास रवाना कर दिया गया। खुशियों से सारा शहर दुल्हन सा बन गया। उसके बाद बादशाह ने कबीर साहब से कहा कि कुरान शरीफ में लिखा है कि जो अपने को खुदा से बड़ा साबित करे उसे काफिर समझना चाहिये और उसका सर उसी समय कलम कर देना चाहिए—इसलिए आप मरने के लिए तैयार हो जाइये। कबीर साहब बड़े असमंजस में पड़ गये। और कहने लगे बन्दा हरगिज खुदा से बड़ा नहीं हो सकता। बादशाह ने कहा जब कि खुदा और कुदरत के नाम से मेरा शहजादा जिन्दा न हो सका और आपके नाम से जिन्दा हो गया तो आप

ही फैसला कीजिये कि आपका नाम खुदा व कुदरत के नाम से बड़ा हुआ अथवा नहीं। कबीर साहब ने कहा बादशाह सलामत आपको गलतफहमी हो गई है। उसे खुदा ने ही अपनी कुदरत से जिन्दा किया है। परन्तु खुदा ने आप लोगों पर यह जाहिर किया है कि जिस बन्दा पर खुदा खुश होता है उसे अपने से ज्यादा इज्जत देने को तैयार हो जाता है। इस उसूल को हिन्दी अलफाज में इस प्रकार कहा जाता है कि भक्त के बस में है भगवान। यानी बन्दा अपने कब्जे में खुदा को भी कर सकता है। और बादशाह सलामत जिस शक्ति से मैंने इस लड़के को जिन्दा किया है उस शक्ति से उसे दुबारा मार भी सकता हूँ। मुझे जिन्दा करना व मारना दोनों ही आता है। बादशाह यह सुनकर काँप उठा और उसका सारा मलाल दूर हो गया। वह कबीर साहब के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगा। बादशाह ने कबीर साहब से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आप जो चीज चाहें यहां से ले जा सकते हैं। इसके अलावा जो सेवा आप चाहें मैं कर सकता हूँ। लेकिन कबीर साहब ने कुछ भी लेने से मनाकर दिया। बादशाह ने फैजी को ही कबीर साहब को काशी पहुँचाने के लिये दुबारा तैयार किया। कबीर साहब को काशी पहुँचाने के बाद फैजी अकबर बादशाह के पास आगरा पहुँचा और सारी हकीकत बयान की तथा अरब के बादशाह की तरफ से बहुत-बहुत धन्यवाद दिये। अकबर बादशाह ने फैजी को जाना कि यह बहुत आलिम आदमी है उससे असरार किया तुम यहाँ हमारे पास ही रह जाओ। वह मान गया। अकबर बादशाह ने उसे अपना वजीर बना लिया। अकबर बादशाह के दरबार में जो नौ रत्न यानी नौ वजीर थे उनमें फैजी साहब का नाम भी दर्ज है। फैजी साहब दरअसल अरब के रहने वाले थे। अरबी व फारसी के बहुत बड़े आलिम थे। उन्होंने बड़ी किताबें लिखीं उन्हीं किताबों में कबीर साहब का यह चमत्कार भी लिखा है। अब आप इस कथा को पढ़ने के बाद जान सकते हैं कि योग में किस कदर ताकत है और यह योग का ही चमत्कार रहा जिसकी वजह से कबीर साहब ने अरब में जाकर मुर्दा शहजादे को जिन्दा किया।

हार जीत

[कु० श्री निर्मला देशपांडे]

(नाटिका)

प्रथम प्रवेश

[महापंडित मंडन मिश्र के गृहांगण का दृश्य । वृक्ष-शाखाओं पर शुक-सारिकाओं का कलरव—'स्वतः प्रमाणम्, परतः प्रमाणम् ।'

[सरस्वती का प्रवेश]

सरस्वती: अरी सारिके, तूने तो सबसे पहले पाठ आरम्भ कर दिया। (सारिकाओं का कलरव) पंछियों की योनि पाकर भी शास्त्र-वचनों का उच्चारण कर रही हो। दूसरी ओर ये मानव हैं। वे भूल ही बैठे हैं कि उन्हें दुर्लभ मानव देह मिली है और उसमें भी एक दुर्लभ वस्तु प्राप्त हुई है, इस भरत भूमि में जन्म : 'दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम् ।' फिर भी वे अज्ञानान्धकार में भटक रहे हैं। (सारिकाओं का मधुर कलरव—'फलप्रद कर्मफलदायी वा') सारिकाओ ! बताओ, क्या तुम मेरी बात समझ रही हो ? क्या तुम जानती हो कि जिन शब्दों का उच्चारण कर रही हो, वे अक्षर-मात्र नहीं; अक्षर की उपासना से उभरने वाले आनन्दनाद हैं। और हाँ, चिन्तन की चकमक से पैदा होने वाले कुछ स्फुलिंग भी हैं और कुछ ध्यान-मग्नों से निकले हुए नीलम, माणिक, हीरे हैं। क्या तुम जानती हो कि श्रुति का एक-एक शब्द किसी आत्म-समाहित जीवन-योगी में दिखाई देने वाला अमूर्त दर्शन है ! सर्वोच्च ज्योतिपुंज से प्राप्त प्रसाद है।

[नेपथ्य में गम्भीर वेदध्वनि हो रही है]

ओहो, पंडित श्रेष्ठ आ गये। उनकी उपासना का समय कब का बीत चुका है। और मैं इन सारिकाओं की सुमधुर ध्वनि से मुग्ध होकर अपने को भूल ही गयी। (प्रस्थान)

[समिधा, दर्भ आदि लेकर मंडन मिश्र का प्रवेश]

सरस्वती: लाइये, यह सब मुझे दे दीजिये। यज्ञ की तैयारी करना आपका काम नहीं।

मंडन मिश्र: अच्छा ! यज्ञ की तैयारी आप ही करेंगी, सुस्वादु रसोई बनाकर सबको आप ही खिलायेंगी, बच्चों को भी आप ही पढ़ायेंगी, पंडितों के साथ शास्त्र-चर्चा आप ही करेंगी। तो फिर मेरे करने को बाकी क्या रहा ? तब तो मैं पराजित हो गया और मुझे अरण्य का ही आश्रय लेना चाहिए।

सरस्वती: अन्ततः आप हैं पंडित श्रेष्ठ ! मैं भला आपसे वाद क्या कर सकती हूँ ? आप ही ने मुझे विद्या दी। मेरा स्थान तो आपके चरणों में है।

मंडन मिश्र : नहीं-नहीं देवी ! क्या कहती हो तुम्हारा ध्यान मेरे चरणों में नहीं, दर्शनकारों के चरणों में है। मंडन मिश्र तो मीमांसा की मीमांसा ही करता रहेगा, उसमें वह प्रतिभा कहां कि नव-सर्जन करे।

देवी, तुम प्रतिदिन यज्ञवेदी पर घृत की आहुति देती हो, भविष्य में अगर ज्ञान वेदी पर मंडन मिश्र की आहुति देने का अवसर आवे तो पीछे मत हटना।

सरस्वती : नहीं-नहीं, ऐसा न कहिये। मैं इतनी भाग्यशालिनी हूँ कि ऐसा अवसर मेरे जीवन में कभी नहीं आने वाला है।

मंडन मिश्र : यदि अवसर आवे तो तुम और भी भाग्यशालिनी।

सरस्वती : मुझे नहीं चाहिए वह भाग्य।

मंडन मिश्र : देवी, कठोपनिषद् में कहा है 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।' ज्ञान की उपासना तलवार की धार पर चलने के समान है।

सरस्वती : कठोपनिषद् ! बड़ा प्रेरक ग्रंथ है यह। इसकी याद से ही उस छोटे-से नचिकेता का चित्र मेरे सामने खड़ा हो जाता है। कितना अद्भुत और तेजस्वी था वह बालक ! ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के लिए साक्षात् यमराज के पास पहुँच गया। यमराज उसे प्रलोभन देते हैं : "सम्पूर्ण वसुधा का राज्य ले ले, समस्त भोगविलास ले ले, जो चाहे सो ले ले, लेकिन ज्ञान मत मांग।" 'नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।' तब वह बालक निर्भयतापूर्वक कहता है : 'तवैव वाहास्तव नृत्यगीते' "आपकी गाय, घोड़े और नृत्य-गीत आपके ही पास रहने दो, मुझे यह सब नहीं चाहिए, मुझे तो ज्ञान ही चाहिए।" 'नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।' वास्तव में नचिकेता मुझे बड़ा प्यारा लगता है। (समिधा आदि ठीक से रखती हुई) काशी से आये हुए पंडित सप्ताहभर से आपके साथ वाद करने के लिए बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं और आप प्रतिदिन टालते रहते हैं। आज उपासना के बाद उन्हें बुला लूँगी।

मंडन मिश्र : चाहती ही हो, तो बुला लो। पर उनसे चर्चा करने में मुझे कोई रस नहीं। उनके साथ वाद करना बच्चों के साथ खेलने जैसा है। काशी, प्रयाग, उज्जैन, अर्थात चारों दिशाओं से आये हुए बड़े-बड़े पंडितों को मैंने लीलया पराजित कर दिया। इस मंडन मिश्र से वाद करने की योग्यता भारत के किसी मनुष्य में नहीं है। मैं चाहता अवश्य हूँ कि किसी योग्य पंडित के साथ वाद हो। देवी, तुम प्रार्थना करो कि चन्द्रलोक या इन्द्रलोक में से कोई ऐसा पंडित इस धरती पर अवतरित हो, जो मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखता हो।

सरस्वती : यह भारतभूमि अभी वन्ध्या नहीं हुई है नाथ ! कन्याकुमारी की तपोभूमि से लेकर हिमगिरि के कैलाशशिखर तक विस्तृत यह धरा कैसे-कैसे रत्न पैदा करेगी, कौन जानता है ! नर्मदा के तीरों पर जो महान् जन्म है, वैसी ही गुरु गहन धरा है यह। जहाँ ... वर्ष का बालक नचिकेता यमराज को झुका सकता है, वहाँ पंडितलोक की वाद-लालसा

पूरी करने के लिए मनिकर्ता क्यों नहीं पैदा होगा ? क्षमा कीजिये, आप महान् है, पंडित-श्रेष्ठ है, लेकिन यह नवरत्नोपेत-प्रसवा भरत-भूमि हम सबसे महान् है।

[सारिकाओं का कलरव]

मंडन मिश्र : (हँसते हुए) साधु-साधु ! बहुत अच्छा !! सारिकाएँ भी तुम्हारा अनुमोदन कर रही हैं।

सरस्वती : हाँ, वह मेरी ही जाति की जो है। (समिधा-पात्र उठाते हुए) आज उपासना में बड़ा विलम्ब हो गया है।

मंडन मिश्र : कोई बात नहीं। हमें अब परमात्मा से पाना ही क्या बाकी है ? 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' जिसने ज्ञान पा लिया, उसने सब कुछ पा लिया।

द्वितीय-प्रवेश

[सिर पर गागर लिये तीन महिलाओं का प्रवेश। नगर के पथ का दृश्य, शंकर का आना।]

शंकर : (स्वगत) मंगल दर्शन। जलपूर्ण कुम्भ ऐसे ही हैं, जैसे ब्रह्मरस से परिपूर्ण विश्व हो। (प्रकट) भद्रे, क्या आप बतला सकती है कि मंडन पंडित का निवास-स्थान कहां पर है ?

प्रथम महिला : मंडन पंडित का निवास-स्थान पूछ रहे हैं ? आप चन्द्रलोक से आये हैं या ब्रह्मलोक से, इस भरतभूमि का बच्चा-बच्चा मंडन-पंडित-निलयम् जानता है।

द्वितीय महिला : भरतभूमि का ही नहीं संपूर्ण पृथ्वी का। हमारे नगर में आने का अब कोई साहस नहीं करता। मंडन पंडित के सामने कोई विद्वान् टिक ही नहीं पाता।

प्रथम महिला : आप कहां से आ रहे हैं ? पृथ्वी का मानदण्ड हिमालय लांघकर आये हैं या सागर की उत्ताल लहरों के साथ झूमनेवाली नौका से ?

शंकर : भद्रे, मैं परदेशी नहीं हूं। इसी आर्यभूमि की चरण-रज ने इस शरीर को पावन किया है।

प्रथम महिला : (द्वितीय से) तब तो द्वार निश्चित है। मैं तो सोचती थी कोई परदेशी होगा, सुदूर पूर्व से आया होगा। वाद सुनने में रस आयेगा। ये तो वाद किये बिना ही हारनेवाले हैं।

तृतीय महिला : (दोनों से) चुप भी रहो, मंडन पंडित के नगर की महिलाएँ इस तरह अतिथियों के साथ उलझा नहीं करतीं। (शंकर से) महोदय, यहां से सीधे जाइये, फिर दाहिने मुड़िये। वहां साल-वृक्ष की डालियों पर शुक-सारिकाओं का मधुर कलरव सुनाई देगा।

प्रथम महिला :

'स्वतः प्रमाणम्, परतःप्रमाणम्,
कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा,
जानीहि तत् मण्डनपण्डितौकः ॥'

जहां आचार्य जैमिनि और बादरायण की चर्चा मानव नहीं, शुक-सारिका किया करती हैं, वही है मंडन-पंडित-आलयम्।

'जगद्ध्रुवं स्यात्, जगदध्रुवं स्यात्,
कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा,
जानीहि तत् मण्डनपण्डितौकः ॥'

जहां पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा की चर्चा पंछियों के कलरव में सुनाई देती है, वही है मंडन-पंडित-सदनम् ।

द्वितीय महिला : (प्रथम से) बेचारा संस्कृत क्या समझेगा, कोई बौद्ध-भिक्षु होगा ।

प्रथम महिला : और क्या ! इनके गुरु भी तो ग्रामीणों की बोली पाली ही बोला करते थे ।

शंकर : भई ! मैं आपसे मार्ग-दर्शन चाहता हूं ।

प्रथम महिला : मार्ग-दर्शन तो हम सदा ही किया करती हैं ।

तृतीय महिला : महाराज, अविनय के लिए क्षमा कीजियेगा । मैंने आपसे कहा था कि आप सीधे जाइये और जहां शुक-सारिकाओं का कलरव सुनाई देगा, वही मंडन पंडित का आवास-स्थान है ।

शंकर : धन्यवाद, मैं बहुत दूर से आ रहा हूं, इसीलिए मुझे 'मण्डनपण्डितौकः' का ज्ञान नहीं था । आपने मार्ग-दर्शन कर मुझे उपकृत किया । (प्रस्थान)

तृतीय महिला : तुम सभ्यता का तनिक ध्यान नहीं रखतीं । माता सरस्वती को जब यह ज्ञात होगा कि उनके अतिथि का उपहास किया गया है, तो वे क्या कहेंगी ?

प्रथम महिला : ऐसे सैकड़ों अतिथि देख चुकी हैं हम । आते तो हैं अभिमान से साथ सिंह की तरह दहाड़ते हुए, लेकिन सब श्वान की तरह दुम दबाकर भाग जाते हैं ।

द्वितीय महिला : चंडांशु भास्कर की कृपा बढ़ रही है । जल्दी चलो । (हां-हां, चलो। बड़ी देर हो रही है कहती हुई सब चली जाती हैं ।)

तृतीय प्रवेश

[मंडन पंडित के आंगन का दृश्य, पक्षियों का कलरव । शंकर का प्रवेश ।]

शंकर : (स्वगत) महिलाओं ने ये ही तो लक्षण बतलाये थे । शुक-सारिकाओं का कलरव ! यही मंडन पंडित का निवास-स्थान होना चाहिए । (प्रकट)

'भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी,
माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।'

[भीतर से सरस्वती की आवाज—अरे, देखो तो बाहर कौन आया है ।]

[तीन बटुकों का प्रवेश]

प्रथम बटु : (प्रणाम करते हुए) आगम्यताम्, सुस्वागतम् ! आपका परिचय ?

शंकर : मैं मंडन पंडित से मिलने आया हूं । इस शरीर को 'शंकर' कहते हैं । आप मंडन पंडित के शिष्यगण ?

द्वितीय बटु : आम् ! मंडन पंडित के और माता सरस्वती के भी ।

तृतीय बटु : मैं तो माता सरस्वती का ही शिष्य हूं, मंडन पंडित में हमें ज्ञान देने की क्षमता नहीं है ।

प्रथम बटु : असंबद्ध प्रलाप मत करो।

तृतीय बटु : मैं सर्वथा संबद्ध वचन कह रहा हूँ। अतिथिवर, सच बात यह कि मंडन मिश्र की बातें हमारे मस्तिष्क में पैठती ही नहीं।

प्रथम बटु : अर्थात् तुम ज्ञान ग्रहण करने के योग्य ही नहीं हो।

तृतीय बटु : तात्पर्य एक ही है, समस्त कमलों को विकसानेवाला सूर्य कुमुद के सामने हार खा जाता है। चन्द्रमा की सौम्य, शीतल किरणों का स्पर्श पाकर ही कुमुद खिलता है। हम तो ठहरे भैया कुमुद। माता के स्नेहसिक्त शब्दों से हमारी प्रसुप्त मति जाग उठती है। अतिथिवर, माता सरस्वती जब पढ़ाती हैं, तो उनके वचन ऐसे मधुर प्रतीत होते हैं, जैसे उनके हाथ का बना भोजन।

शंकर : माता की महिमा अपार है।

'श्वपाको जल्पाको भवति,
मधुपाकोपमगिरा।
निरातंको रंको विहरति,
चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे! कर्णे विशति,
मनुवर्णे फलमिदम्।
जनः को जानीते जननि,
जपनीयं जपविधौ॥
...कुपुत्रो जायेत,क्वचिदपि
कुमाता न भवति।'

तृतीय बटु : अतिथिवर, हमें यह श्लोक सिखा दीजिये। हमें यह बहुत अच्छा लगता है।

शंकर : अवश्य सिखाऊँगा, आप जैसे बटुकों के लिये ही यह रचा गया है।

[शंकर श्लोक सिखाते हैं, बटु दुहराते हैं।]

तृतीय बटु : अतिथिवर, और एक सिखाइये न।

शंकर : अच्छी बात है, बोलो।

'सत्सङ्गत्वे निःसङ्गत्वं,
निःसङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलितत्वं,
निश्चलितत्वे जीवन्मुक्तिः॥'

[बटु श्लोक बोलते हैं। सरस्वती प्रवेश करती हैं।]

सरस्वती—वामन, माधव, अतिथिवर को कितना कष्ट दे रहे हो? उन्हें बैठने के लिए आसन भी नहीं दिया अब तक! (शंकर की ओर) क्षमा कीजियेगा। आसन ग्रहण कीजिए।

[बटु भाग जाते हैं, शंकर प्रणाम करते हैं।]

शंकर : नारायण! जगन्मातरं वन्दे।

सरस्वती : विजयी भव! बच्चों को सिखाया: अब माँ को भी पढ़ाइये।

शंकर : मैं सारे जगत् को पढ़ा सकता हूँ, लेकिन माता को नहीं।

सरस्वती : आसनस्थ हो जाइये। हमारी भारतभूमि आप जैसे अभ्यागतों के आगमन से प्रफुल्लित हो उठती है। बुद्धदेव ने आपको हमसे सदा के लिए स्नेह-बंधन में जोड़ दिया है।

शंकर : नहीं मात:! मैं बौद्धधर्मी नहीं और न विदेशी ही हूँ।

सरस्वती : (ध्यान से देखती हुई) तो आप भारतीय हैं? और वैदिक धर्म के अनुयायी?

शंकर : हाँ ! मैं वेदान्त-विचार का एक क्षुद्र सेवक ।

सरस्वती : वैदिक धर्मानुयायी और संन्यासी। असंभव ! असंभव !!

शंकर : चाहें तो 'अनुचित' कहिये, 'असंभव' न कहिये ।

सरस्वती : कलियुग में संन्यास वर्ज्य है और युवावस्था में तो सर्वथा वर्ज्य ।

शंकर : युग हमें नहीं बनाता, हम ही युग का बनाते हैं ।

सरस्वती : लेकिन प्राचीन शास्त्रों का ही यह आदेश है कि कलियुग में संन्यास नहीं लिया जा सकता ।

शंकर : प्राचीन शास्त्रों के सब आदेशों को मानने की जिम्मेदारी वर्तमान में क्यों उठानी चाहिए ? अगर शास्त्र कहे कि आग ठंडी है तो क्या हम उसे मानेंगे ?

सरस्वती : वह नहीं मानेंगे, लेकिन कलियुग में संन्यास ?

शंकर : संन्यास शाश्वत और सनातन सत्य है । किसी भी देश, काल और परिस्थिति में संन्यास लिया जा सकता है । संन्यास मुक्ति मार्ग का प्रशस्त करता है ।

सरस्वती : तो क्या प्राचीन शास्त्रों का अनादर किया जाय ?

शंकर : नहीं ! उनका तो आदर करना ही चाहिए । हाँ, उनका ग्रहण विवेकपूर्वक करना चाहिए । अन्न साफ करते समय जैसे भूसे को फेंक दिया जाता है, वैसे ही शास्त्रों में से सनातन सत्य को ग्रहण करना चाहिए ।

सरस्वती : शास्त्रों में भूसा ?

शंकर : हाँ ! श्रुति, स्मृति में भी कुछ ऐसी बातें भरी पड़ी हैं, जिनकी हमें आवश्यकता नहीं है ।

सरस्वती : और फिर प्रमाण ?

शंकर : प्रमाण है आत्मा ! आत्म-प्रमाण की कसौटी पर प्रत्येक शास्त्र, प्रत्येक विचार को कसना चाहिए ।

[भीतर से वेदध्वनि]

सरस्वती : चर्चा में मैं भूल ही गयी कि मैं गृहिणी भी हूँ । आप स्नान-संध्या से निवृत्त हो जाइये, भोजन तैयार है ।

शंकर : मैं भूखा जरूर हूँ, लेकिन भोजन का नहीं, ज्ञान का । मंडन पंडित के दर्शन करना चाहता हूँ ।

सरस्वती : शीघ्र ही उन्हें आपके दर्शन का लाभ हो जायगा । आप विश्राम कीजिये, मैं उन्हें भेज देती हूँ । (भीतर की ओर जाती है । वामन ! पंडितवर को सूचना दे दी न तुमने । पुन: शंकर से पूछती है ।) क्या मैं जान सकती हूँ उस जननी और जन्म भूमि को जो आपको जन्म देकर कृतार्थ हुई है ।

शंकर :

'कैलासाचलकंदरालयकरी,
गौरी उमा शंकरी ।
कौमारी निगमार्थगोचरकरी,
ओंकारबीजाक्षरी ॥'

कन्याकुमारी जहाँ तपस्या कर रही है, उस केरल प्रदेश के कालडी ग्राम में प्रातःस्मरणीय अंबा ने इस शरीर को जन्म दिया ।

सरस्वती : और फिर ?

शंकर : फिर माँ की अनुमति से मैंने आठ वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण किया। और

'अलक्षलक्षकिन्नराकरासुरादिपूजितम् ।
सुलक्षनरित्तारियरिपक्षिलक्षकृतजितम् ॥

नर्मदा के तट पर गुरु गोविन्दपाद के चरणों में बोध प्राप्त किया और ...

सरस्वती : और आगे ?

शंकर : और अब जन-जन को मुक्ति-मार्ग बताने के लिए संचार कर रहा हूँ।

सरस्वती : कठिन तपस्या से तो आपका शरीर सूख गया है, पर आत्मा बलवान् हो गयी है। क्या मैं आपकी साधना के सम्बन्ध में और कुछ जान सकती हूँ ? (भीतर से मंडन मिश्र की आवाज—बटु, कहाँ है माताजी !) पंडितवर आ रहे हैं, आसन ग्रहण कर लीजिये।

शंकर : पंडितवर को प्रणाम करने से पहले आसन ग्रहण करने में अविनय होगा। क्षमा कीजिये।

सरस्वती : उन्हें देर क्यों हो रही है। मैं अभी भेज देती हूँ।

[भीतर जाती है, बटुकों का प्रवेश]

तृतीय बटु : हाँ-हाँ, ऐसे ही अच्छे श्लोक भी सिखाइये।

प्रथम बटु : जो सिखाये थे, वे ही नहीं याद हुए।

तृतीय बटु : तुम्हारी बुद्धि में भूसा भरा होगा, मुझे तो उसी समय पूरा याद हो गया।

द्वितीय बटु : अतिथिवर, आप कब तक यहाँ ठहरेंगे ?

तृतीय बटु : आप यहीं रहिये या हमें अपने साथ ले चलिये।

प्रथम बटु : भैया, हम तो माताजी को छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे।

तृतीय बटु : बात तो ठीक कही तुमने। तो फिर अतिथिवर को यहीं रख लेंगे। एक और श्लोक सिखाइये न।

शंकर : और चाहते हो, जितना चाहो उतना ले लो। बोलो—"चिदानंदरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।"

[बटु बोलते हैं, मंडन मिश्र का प्रवेश]

मंडन मिश्र : मंडन मिश्र के शिष्यों को ज्ञान देने की धृष्टता आज तक किसीने नहीं की। (बटु भाग जाते हैं)

शंकर : नारायण ! वन्दे, इसीलिए तो मैं कर रहा हूँ। क्षमा कीजिये। वाद से पहले मुझे यह नहीं करना चाहिए था।

मंडन मिश्र : अच्छा ! तो आप मुझसे वाद करने आये हैं। आपका परिचय !

शंकर : परिचय इतना ही पर्याप्त है कि मैं एक संन्यासी हूँ।

मंडन मिश्र : संन्यासी ! कलियुग में संन्यासी !

शंकर : जी हाँ, और मैंने स्वयं ही संन्यास ग्रहण नहीं किया है, बल्कि संन्यास का प्रचार

भी कर रहा हूँ ।

मंडन मिश्र : सर्वथा अनुचित, अत्यन्त अनुचित !

शंकर : इसी विषय पर वाद करने मैं यहां आया हूं ।

मंडन मिश्र : मंडन मिश्र के साथ वाद करने से पहले खूब सोच विचार लीजिए ।

शंकर : सोचता वह है, जिसकी बुद्धि में सन्देह और संशय हो । शंकर के सम्पूर्ण संशय नर्मदा के जल में समर्पित हो चुके हैं : 'गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा ।'

मंडन मिश्र : मैंने 'पराजय' (हार) शब्द केवल शब्दकोश में ही देखा है । युवक, व्यर्थ ही क्यों बलि-वेदी पर चढ़ रहे हो ?

शंकर : बलि-वेदी पर चढ़े बिना सत्य की खोज कैसे हो सकती है, पंडितवर !

मंडन मिश्र : ठीक कहिये, इस वाद में आप हार गये तो ?

शंकर : तो मैं गृहस्थ बनकर आपका शिष्यत्व ग्रहण कर लूंगा ।

मंडन मिश्र : और विजयी हुए, तो मैं आपका शिष्यत्व ग्रहण कर संन्यासी बन जाऊँगा । (मुस्कराकर) ठीक ही है, आपकी उम्र भी गृहस्थ बनने की ही है ।

शंकर : और आपकी संन्यास लेने की । और ... संन्यास के लिए आयु की नहीं, ज्ञान की आवश्यकता है ।

मंडन मिश्र : चिरंजीव ! मैं ऐसा ही प्रतिस्पर्धी चाहता था । अब वाद में रंग आयेगा । 'अद्य महोत्सवमहो स्वयमागतः ।' आपके रूप में साक्षात् उत्सव निकट आया है । आप मेरी वर्षों की अभिलाषा पूर्ण कर रहे हैं । प्राणों की बाजी लगाकर ही ज्ञानचर्चा करने में रस आता है । इस वाद में जो विजय प्राप्त होगी, उस पर मंडन मिश्र को गर्व होगा ।

शंकर : इस वाद में न मंडन मिश्र विजयी होंगे, न शंकर, बल्कि सत्य की जीत होगी और असत्य की हार ।

मंडन मिश्र : बहुत अच्छा ! प्रतिस्पर्धी हो तो आप जैसा ही हो !

शंकर : तो फिर वाद का आरम्भ आज से ही हो जाय ।

मंडन मिश्र : हाँ-हाँ, ठीक है । वादी-प्रतिवादी तो उपस्थित हैं, पर मध्यस्थ, न्यायाधीश कौन बनेगा ?

शंकर : माता सरस्वती !

मंडन मिश्र : क्या कहा !

शंकर : जी हां ! माता सरस्वती ।

चतुर्थ प्रवेश

[नगर का पथ, तीन महिलाएं गागर लिये जा रही हैं]

द्वितीय महिला : आज वाद का अंतिम दिन है । निर्णय आज संध्या को हो जायगा ।

प्रथम महिला : मैं वाद सुनने प्रतिदिन जाती थी । समझती तो कम ही थी, पर सुनने में बड़ा रस आता था ।

तृतीय महिला : जाना तो मैं भी चाहती थी, लेकिन इस गृहस्थी से समय मिले तब न !

उस दिन एक घड़ी के लिए उधर भागी गयी तो घर पर ऐसा तूफान मचा—सास बन गयी बिजली और ननदें घुमड़ते बादल। फिर हम पर ऐसी बरसी कि बस! भगवान्! क्या स्त्रियों को कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी।

प्रथम महिला : तुम्हारे घर पर तूफान आया तो हमारे घर पर बवंडर। लेकिन मैंने परवाह ही नहीं की। सास गालियाँ बकती ही रहीं और मैं प्रतिदिन भोर में ही रसोई आदि से निपटकर वाद सुनने पहुँचती रही। (भाव-विभोर होती हुई) अहा, क्या आनन्द आता है, माता सरस्वती को देखकर! मध्यस्थ का आसन ग्रहण करते समय उन्होंने कहा था : "इस आसन को ग्रहण करने का अर्थ यह है कि यहाँ मेरा पत्नी-धर्म समाप्त हो जाता है। श्रुति, स्मृति और दर्शनों के प्रति निष्ठा रखकर मैं मध्यस्थ के धर्म का पालन करूँगी।" उनके ये शब्द सुनकर मन प्रसन्न हो गया। ऐसा लगता था कि साक्षात् माँ शारदा ही स्वर्ग से अवतरित हुई हों।

द्वितीय महिला : तुम क्या सोचती हो, इस वाद में कौन जीतेगा ?

तृतीय महिला : यह क्या पूछ रही हो आज! भला मंडन मिश्र कभी हार सकते हैं ?

प्रथम महिला : ऐसा न कहो, तुमने वाद सुना नहीं है। वह युवक ऐसे शब्द-बाण छोड़ता है, जैसे कोई वीर शर-संधान कर रहा हो। कैसा है उसका तेज! वह ऐसा है, जो मानो चक्रवर्ती सम्राट के पद-भार से पृथ्वी काँप रही हो।

तृतीय महिला : क्या तुम समझती हो कि शंकर विजयी होंगे ? प्रथम महिला : मैं तो यही समझती हूँ।

तृतीय महिला : हाय! मंडन पंडित संन्यासी बनेंगे? और फिर माता सरस्वती की क्या दशा होगी ?

प्रथम महिला : अच्छा ही होगा। वे गृहस्थी के बंधन से मुक्त हो जायेंगी। इस कलियुग में संन्यास धर्म भुला गया, तो हमारे पति हमें मरने तक सताते रहेंगे। शंकर की विजय से संन्यास का मार्ग प्रशस्त हो जायगा और हम भी मुक्ति की साँस ले सकेंगी।

तृतीय महिला : मार्ग प्रशस्त होगा, तो केवल पुरुषों के लिए ही; हमें तो अंतिम श्वास तक इसी तरह पिसे जाना है।

द्वितीय महिला : देवी सरस्वती के समक्ष बड़ी कठिन समस्या है। अपने ही पति के विरुद्ध वह कैसे निर्णय देंगी? और वह भी ऐसा निर्णय कि उनके पतिदेव उन्हें छोड़कर चले जायेंगे। हे भगवन्!

तृतीय महिला : मैं तो समझती हूँ कि ऐसा समय नहीं आयेगा। मंडन पंडित अवश्य विजयी होंगे। माता सरस्वती का सुहाग अमर रहेगा।

प्रथम महिला : तुम तो यही चाहती हो कि मंडन विजयी हों।

द्वितीय महिला : मंडन पंडित संन्यासी बनकर चले जायेंगे, तो हमारे नगर की

शोभा ही समाप्त हो जायगी। फिर हमें कौन पूछेगा।

प्रथम महिला : आज ही कौन पूछता है? चलो-चलो, देर हो जायगी तो अच्छी मरम्मत होगी। (चली जाती है)

[वृद्ध प्रवेश करते हैं]

प्रथम वृद्ध : क्यों रे, इस बार में किसकी जीत होगी?

द्वितीय वृद्ध : पंडितवर की हार हो तो अच्छा। वे बड़े आदमी सम्भवतः, दमकर और फिर माता सरस्वती हमें पछाड़ेंगी।

तृतीय वृद्ध : हार और वो भी पंडितवर की! उनकी हार संभव ही नहीं है। यह 'न भूतो न भविष्यति' वाली बात है।

प्रथम वृद्ध : 'न भूतो न भविष्यति' नहीं कह सकते। कल तक जो संभव नहीं था, वह आज संभव हो जाता है।

तृतीय वृद्ध : आर्य शंकर के श्लोक, संगीत सुनकर तुम मुग्ध हो गये हो, इसीलिए यह सब कह रहे हो। मंडन मिश्र की हार सर्वथा संभव नहीं।

प्रथम वृद्ध : और तुम वह रहते कौन नहीं कर सके, इसीलिए चम्पी-चौड़ी बातें कर रहे हो।

द्वितीय वृद्ध : अरे-अरे, लड़ो मत। तुम इस तरह लड़ोगे, तो वे नारियाँ कहेंगी : "तुमसे तो हम ही अच्छी।"

प्रथम वृद्ध : चलो, वाद का समय हो गया।

पञ्चम प्रवेश

[सरस्वती का महल। माता सरस्वती आसन पर बैठ पूजा-पाठ कर रही है। अकस्मात् उठ खड़ी होती है।]

सरस्वती : आज तक न ऐसा सम्मान किसी ने माँगा होगा और न किसी ने दिया होगा। देवि शारदे! अपनी कन्या की रक्षा करें। उसे बल दें। उसे साहस दें!! मैंने बचपन में गुड़ियों का खेल कभी नहीं खेला। मुझे तो दिन-रात पढ़ने की ही लगन लगी रहती थी। माँ डाँटती, कहतीं—"लड़कियों को पढ़ना शोभा नहीं देता। ससुराल में क्या सबको श्रुति की दाल और स्मृति का भात खिलाओगी।" पिताजी का तो योगदान ही इस शौक में बढ़ता है। मैंने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया। पिताजी सदा मुझे प्रोत्साहन देते। वे चाहते थे, उनकी बेटी ज्ञानी बने, तेजस्वी बने। वे माँ से कहते : "तुम क्यों चिन्ता करती हो, इसके वर के लिए मैं याज्ञवल्क्य ही ढूँढ़ लाऊँगा। फिर याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी जैसी करेंगे ज्ञान की उपासना।" माँ को यह कभी नहीं भाया। वह बराबर कहा करतीं कि शिशु के एक बूँद आँसू में सारा ज्ञान न भूल जाओगी। माँ! मैं तुम्हारा कहना न नहीं भूली। मैंने अपना अध्ययन जारी रखा। आसपास के लोग कहने लगे कि सरस्वती महान् विदुषी है। लेकिन मैत्रेयी के सामने ऐसी समस्या कभी नहीं आयी। मैत्रेयी ने पति से ज्ञान माँगा, धन सम्पत्ति नहीं। लेकिन! लेकिन!! आपकी तरफ की तो शायद

शक्ति के विरुद्ध... पिताजी, आपकी शक्ति के ज्ञान की आज कसौटी होने वाली है। उसे बल दीजिये। आपकी बेटी शास्त्रार्थ करने में पीछे नहीं हटेगी। भारत के षड्दर्शन उसके कण्ठ को आभूषित कर रहे हैं। दर्शन की, ज्ञान की कोई कमी नहीं। लेकिन, लेकिन... इस वाद का निर्णय देने में उसे और बल चाहिए! कुछ और बल चाहिए!!... दुनियां मानती है कि स्त्री दुर्बल है, संसारासक्त है। स्त्री को 'माया' कहा गया है, 'ममता' कहा गया है, 'आसक्ति' कहा गया है। योगियों को कनक-कान्ता के प्रलोभन से दूर रहने का संकेत किया गया है। कनक और कान्ता! जड़ सम्पत्ति और स्त्री को समान माना गया, मेरी आत्मा विद्रोह करना चाहती है। मैं इसे कभी नहीं स्वीकार करूँगी।

[बटु का प्रवेश]

बटु : मां सब जानना चाहते हैं कि क्या आप प्रस्तुत हैं।

सरस्वती : हां, मैं प्रस्तुत हूं। देवि शारदे तुम्हारी भक्त प्रस्तुत है। हे दर्शनकारो! आपकी उपासिका प्रस्तुत है। पिताजी! आप तो आत्मना प्रस्तुत हैं।

[नेपथ्य में—"आइये, इधर से आइये।" मंडन मिश्र की आवाज।]

[मंडन मिश्र और शंकर प्रवेश करते हैं। दोनों सरस्वती को प्रणाम करते हैं।]

सरस्वती : आसनस्थ हो जाइए।

शंकर : माताजी, वाद की समाप्ति तो आपने प्रातःकाल घोषित कर दी है। निर्णय में विलम्ब हो तो कोई बात नहीं।

मंडन मिश्र : हां-हां! निर्णय के लिए आप चाहे जितना समय लीजिये।

सरस्वती : नहीं, समय नहीं दूँगी। सत्य के दर्शन और सत्य के प्रकटीकरण के लिए समय अपेक्षित नहीं होता। मैं आज ही और इसी समय निर्णय दूँगी!

शंकर और मंडन मिश्र : (एक साथ) हम अति उत्सुक हैं निर्णय सुनने के लिए।

सरस्वती : सत्य के आविष्कार के लिए लिए भगवान् किसी न किसी को निमित्तमात्र बना देता है। मेरे सम्मुख भारत के दो प्रकाण्ड पण्डितों का वाद हुआ। उसका निर्णय मैं देने वाली हूँ, यह सब मिथ्या है। निर्णय मैं नहीं दूँगी, ईश्वर ही मेरे द्वारा दिलवायेगा।

आइये शंकर! विजय आपकी हुई है। जगत् आपको 'शंकराचार्य' के नाम से जानेगा। आपका यश दसों दिशाओं में फैलेगा।

पंडितवर! आपकी हार में भी विजय है। सत्य की वेदी पर आपने सर्वस्व की आहुति दी है। अब आप शंकराचार्य से संन्यास की दीक्षा लीजिये।

[दोनों प्रणाम करके चले जाते हैं]

दुःख! क्या मुझे दुःख हो रहा है। मन को दुःख हो रहा है! होगा, मेरा उस मन से क्या सम्बन्ध! दुःखी होना मन का धर्म है, मेरा नहीं। मैं तो इस मन से अलग हूँ। मेरे मन! खूब समझ ले कि तेरा शासन समाप्त हो गया। मनोमय कोश से मुक्ति पाकर मैं

अतिमानस, विज्ञानमय कोश की ओर जा रही हूँ। वह दिन भी आयेगा, जब आनन्दमय कोश में प्रवेश करूँगी और तब ऋषियों के साथ गर्जना करूँगी :

'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

आनन्दाद् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते।

आनन्देन जातानि जीवन्ति।

आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति॥'

[बटुकों का प्रवेश]

प्रथम बटु : माँ ! यह क्या हुआ ?

सरस्वती : तुमने सुसंवाद नहीं सुना ?

द्वितीय बटु : सुसंवाद ? कैसा सुसंवाद ? पंडितवर तो संन्यासी बनकर आ रहे हैं।

सरस्वती : हाँ, मेरे वत्स ! यह सुसंवाद ही है। पंडित-श्रेष्ठ का संन्यास-ग्रहण अद्भुत घटना है। भारत की सन्तानों के लिए यह घटना एक दीप-स्तम्भ जैसा प्रकाश प्रदान करेगी। जब मानव सम्प्रदायाभिमान, धर्माभिमान, देहासक्ति आदि अभिमान और आसक्तियों में फँसेगा, तब स्मरण करेगा कि ज्ञान की वेदी पर मंडन पंडित ने अपना बलिदान किया था। यह बलिदान मानव को ज्ञान-निष्ठा का पथ दिखलायेगा।

सभी बटु : माँ, हम पंडितवर का अंतिम दर्शन ले लें।

सरस्वती : जाओ, (बटु जाते हैं) वे चले जायेंगे ? मुझे छोड़कर चले जायेंगे। पिताजी ! याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को छोड़कर जा रहे हैं। मैत्रेयी एकाकी रहेगी ! नितान्त एकाकी !

[मंडन मिश्र का प्रवेश, संन्यासी के वेश में]

मंडन मिश्र : देवी ! अंतिम प्रणाम करने आया हूँ।

सरस्वती : विजयी भव ! सत्यनिष्ठा के लिए आपने सर्वस्व त्याग दिया। भरत-भूमि आपको कभी नहीं भूलेगी।

मंडन मिश्र : देवी, 'भार्यास्मि, भर्ता-त्वमसि' कहते हुए मेरा हाथ पकड़कर तुमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया था। मेरी ज्ञान-साधना में छाया की भाँति मेरे साथ रही। सुख में, दुःख में, हार में, जीत में साथ रही। मंडन मिश्र का यश दुनिया ने देखा। मंडन मिश्र को प्रेरणा देने वाली, बल देने वाली, उसकी सखी, उसकी सहधर्मचारिणी देवी, मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, लेकिन तुमको ··

सरस्वती : आप मुझे नहीं छोड़ रहे हैं, मैं आपको छोड़ रही हूँ। वाद का निर्णय मैंने दिया है।

मंडन मिश्र : देवी, गृहस्थ-जीवन संबंधी मेरे सब अपराधों को क्षमा कर दो।

सरस्वती : गृहस्थ-आश्रम की समाप्ति के साथ ही उस आश्रम के सब पाप-पुण्य भी समाप्त हो गये। संन्यासी के लिए न कोई भूत-काल है, न वर्तमान, न भविष्यत् ही। संन्यासी तो कालातीत, अनादि, अनन्त ब्रह्म का उपासक होता है।

मंडन मिश्र : देवी, कभी तुम मेरी थीं, इसका मुझे गर्व था। कितना गर्व था ! कितना अभिमान !!

सरस्वती : संन्यासी के लिए न कोई स्वकीय है, न कोई परकीय । संन्यासी तो निर्गुण, निराकार ब्रह्म का उपासक है ।

मंडन मिश्र : देवी, आप लक्ष्य पर पहुँच चुकी हैं । मेरे लिए अभी काफी मंजिल तय करना शेष है । देवी, हमारा गृहस्थाश्रम कितना सुखमय था । एक-एक दिन सुख से बीता । तुम जैसी संगिनी के रूप में मैंने सब कुछ पा लिया था । मैंने संन्यासी के वस्त्र धारण किये हैं, लेकिन हृदय कहाँ वैराग्य के रंग से रंग से रँगा है । वहाँ तो आज भी देवी सरस्वती की मूर्ति विराजमान है । देवी, संन्यास का कठिन मार्ग लिया है मैं, लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ूँगा । गिरने पर तुम्हारा स्मरण करूँगा, तुम्हारी स्मृति मुझे बल देगी ।

सरस्वती : समस्त सरिताएँ सागर में लीन हो जाती हैं । फिर न उनका अलग नाम रहता है, न अलग रूप । न सरस्वती रहने वाली है, न मंडन मिश्र । एक ही नाम रहने वाला है, और वह अनामी है ।

मंडन मिश्र : तुम महान् हो और मैं तुच्छ । मुझे आशीर्वाद दो । (प्रणाम करके चले जाते हैं)

सरस्वती : (दुःख से) चले गये, चले गये सदा के लिए चले गये । मुझे छोड़कर चले गये । (हिम्मत के साथ) सरस्वती, कौन चला गया, कहाँ चला गया, किसको छोड़कर चला गया । सागर में लहरें उठती हैं और उसी में लीन होती रहती हैं । एक लहर उठी थी, जिसका नाम था मंडन मिश्र । दूसरी लहर उठी थी, जिसका नाम था सरस्वती । दोनों लहरें कुछ देर तक पास आयीं और फिर बिछुड़ गयीं । दोनों ही सागर में लीन होने वाली हैं । सरस्वती, क्यों शोक-विह्वल हो रही है ?

[भीतर से शंकराचार्य की आवाज—"मातः! क्या मैं आ सकता हूँ ।"]

सरस्वती : (आँसू पोंछती हुई) आइये, आइये ।

[शंकर प्रवेश करते हैं]

शंकर : माताजी । प्रणाम करने आया हूँ ।

सरस्वती : विजयी भव ।

शंकर : माताजी, क्षमा चाहता हूँ ।

सरस्वती : किस लिए । आपने अपराध ही क्या किया है,

शंकर : ऐसा घोर अपराध किया है । कि उसका परिमार्जन सिवा क्षमा के और किसी चीज से नहीं होगा । मेरे कारण आपका समस्त सुख छीना गया, आपका गृहस्थ-जीवन समाप्त हुआ । मेरे कारण आपका सब कुछ लूट लिया गया । क्षमा कीजिये माता !

सरस्वती : आचार्य ! आप कह क्या रहे हैं । आप संन्यास मार्ग का प्रचार करने निकले हैं न ।

शंकर : हाँ, पंडित श्रेष्ठ के संन्यास ग्रहण से मुझे विशेष खुशी ही हो रही है । लेकिन आपको ओर देखकर दुःख हो रहा है ।

सरस्वती : क्यों । दुःख क्यों होता है ।

आचार्य, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ। पंडितवर पर तो आपने विजय प्राप्त कर ली है, अब सरस्वती के प्रश्न का समाधान कीजिये, क्या मैं संन्यास-दीक्षा ले सकती हूँ ?

शंकर : आप और दीक्षा !

सरस्वती : इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? संन्यास यदि उचित है, तो सबके लिए उचित है। मैं भी संन्यास लेना चाहती हूँ।

शंकर : माता ! आप वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं, अर्चनीय हैं।

सरस्वती : स्त्री आपकी पूजा, अर्चा और वन्दना नहीं चाहती। वह चाहती है व्यक्ति के नाते समान अधिकार, समान कर्तव्य, समान उत्तरदायित्व। आचार्य ! मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि क्या आपके वैदिक धर्म में स्त्री के लिए मुक्ति नहीं है।

शंकर : नहीं-नहीं। भगवद्गीता में कहा है : 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा-, तेऽपि यान्ति परां गतिम्।' भक्ति-मार्ग लेकर स्त्रियां मोक्ष-पद पा सकती हैं।

सरस्वती : बड़ी कृपा है आपकी, जो हमारे लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। लेकिन मैं जानना चाहती हूँ कि क्या स्त्री ज्ञान-मार्ग नहीं स्वीकार सकती। संन्यासिनी बनकर वेदाध्ययन नहीं कर सकती। क्या आपका धर्म स्त्री को ज्ञान साधना के अधिकारों से वंचित रखना ही इष्ट समझता है।

शंकर : हर व्यक्ति को सभी अधिकारों की क्या आवश्यकता है। स्त्री को परमपद का, मोक्ष का अधिकार है। इससे अधिक वह क्या चाहती है।

सरस्वती : मैं सब कुछ चाहती हूँ। मैं गायत्री मन्त्र का जप करती हूँ, सन्ध्या, उपासना करती हूँ। संन्यासिनी बनना चाहती हूँ।

शंकर : आपका यह कर्म शास्त्र-विहित तो नहीं है, फिर भी क्षम्य माना जायगा।

सरस्वती : मैं क्षमा नहीं, न्याय चाहती हूँ। समस्त स्त्री जाति की ओर से न्याय की मांग कर रही हूँ। आपका धर्म, आपका समाज आपकी कुटुम्ब व्यवस्था सब मेरे लिए बन्धन बने थे। मैं चाहती थी मुक्ति। लेकिन मेरी आत्मा की आवाज किसी ने नहीं सुनी, विवाह के बाजे बजने लगे और उन्होंने आत्मा का गला घोंट दिया। मुझसे कहा गया कि स्त्री को ब्रह्मचर्य का, संन्यास का अधिकार नहीं है। उसे विवाह करना ही होगा। पति का हाथ पकड़कर ही वह जीवन-यात्रा कर सकती है। उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, स्वतंत्र विभूतिमत्त्व नहीं, स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं। वह राह देखती रहेगी कि अगला जन्म पुरुष का मिलेगा और फिर मुक्ति।

शंकर : भगवती, इसी देह में मुक्ति पा सकती हैं।

सरस्वती : यह मेरा प्रश्न नहीं है। स्त्री-जाति की अस्मिता का प्रश्न है। मेरे पिताजी

उदारमना थे, इसीलिए बचपन में शास्त्राध्ययन कर सकी। पति विद्वान् थे, इसलिए वह अध्ययन आगे चलता रहा। लेकिन मुझे अपवाद माना गया, और स्त्रियों को संन्यास का अधिकार न देने वाले विद्वत्-श्रेष्ठ ने भी अपवाद समझकर मेरा सम्मान किया। मैं अपने लिए प्रतिष्ठा नहीं, स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा चाहती हूँ।

शंकर : मैं स्वयं संन्यास को मानव का लक्ष्य मानता हूँ, इसीलिए आपका आदर करता हूँ। फिर भी आप जैसी स्त्रियाँ अपवाद ही मानी जायेंगी। स्त्री माता है, वह अपना कर्तव्य भूल जायगी, तो समाज-व्यवस्था नहीं टिकेगी।

सरस्वती : स्त्री माता है, तो क्या पुरुष पिता नहीं है। क्या अधिकतर पुरुष पिता बनना नहीं चाहते। फिर भी जो मुक्ति चाहता है, वह संन्यासी बनता ही है। क्या यही न्याय स्त्री पर लागू नहीं होना चाहिए। समाज-व्यवस्था के लिए मातृत्व अगर स्त्री का कर्तव्य माना जाता है, तो पितृत्व पुरुष का कर्तव्य है। मुक्ति चाहने वाले पुरुष संन्यासी बन सकते हैं, तो स्त्रियाँ क्यों नहीं।

शंकर : मैं मानता हूँ कि बन सकती हैं, पर समाज नहीं मानेगा। इसमें कोई दलील नहीं है। यह एक मर्यादा का प्रश्न है।

सरस्वती : जिस देश में आत्मा और परमात्मा का, भक्त और भगवान् का भी द्वैत सहन नहीं किया जाता, क्या उस देश में स्त्री पुरुष-भेद सह्य होना उचित है। क्या पुरुष में पूरी और स्त्री में आधी आत्मा है।

शंकर : आपका कथन यथार्थ है। वेदान्त-विचार में स्त्री पुरुष-भेद नहीं है। किन्तु आज जब समाज पुरुषों को ही संन्यास देना उचित नहीं मानता, तो फिर स्त्रियों को कैसे देगा। इसमें मेरे अपने विचार का प्रश्न नहीं है। आज का समाज आपको अधिकार नहीं देगा।

सरस्वती : अधिकार दिये नहीं, लिये जाते हैं, आचार्य। स्वतन्त्रता का दान नहीं दिया जाता, स्वतन्त्रता प्राप्त की जाती है। हम अपने सारे आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक अधिकार लेकर रहेंगी।

शंकर : मुझे उसमें प्रसन्नता ही होगी। लेकिन आज का समाज स्त्रियों को अधिकार देने में असमर्थ है।

सरस्वती : समाज की असमर्थता में ही आपकी हार है। आचार्यवर, सुन लीजिये, एक जमाना आयेगा, जब आपसे भी अधिक ज्ञाननिष्ठ, प्रखर वैराग्यसम्पन्न तेजस्वी, ब्रह्मचारिणी जन्म लेगी, जो आपके शास्त्रों के सारे कूड़े-कर्कट और भूसे को कलम की बुहारी से निकाल फेंक देगी। वह आपसे पूछेगी नहीं कि क्या स्त्री वेदाध्ययन कर सकती है। वह तो वेदों का सर्जन करेगी। वह आपसे नहीं पूछेगी कि समाज-व्यवस्था में स्त्री का क्या स्थान है। वह नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करेगी। वह आपसे नहीं पूछेगी कि क्या स्त्री को ब्रह्मचर्य का, संन्यास का अधिकार है या नहीं। देहभाव को भस्म अपने विभूतित्व को लगाकर सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन करती वह आगे बढ़ती जायगी। अपने पर विजय पाकर जगत् को जीतेगी। स्वराट् बनकर विश्व-सम्राट् बनेगी। आचार्य। वर्तमान आपका हो सकता है, लेकिन भविष्य हमारा है। नारी का है।

अतुकान्त काव्य—

शिव मानस पूजा

[कविभूषण श्री पं० जगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप']

भावों का कल्पित आसन है,
लघु अर्घ, चरण हित, दृग का जल।
मानस-गंगा का शीतोदक,
घट एक भरा, अभिषेक हेतु॥
दिग-अम्बरधारी को अर्पित,
केवल श्रद्धा का शून्य वसन।
आभूषण मन कल्पित बहु विधि,
चन्दन हार्दिक उत्पल परिमल का॥
है पुष्प सुवासित बहु प्रकार,
अर्पित, कर्मों के बिल्व पत्र।
पापों की सरलाधूप सहित,
है दीप समर्पित स्नेही॥
पशुपति जगदीश्वर के प्रसाद,
अर्पण है बहु विधि मन—मोदक।
नाना ऋतु फल सद् कर्म मेरे,
षड् वर्ग, समर्पित पान रूप॥
है भँवर, छत्र यह वायु व्यजन,
षट् चक्र मनहु निर्मल वीणा।
भव भँवर जाल, यह नृत्य मेरा,
स्वाँसों का आगम नित्य गीत॥
सर्वांग नमन शाश्वत प्रणाम,

समझो प्रभुवर यह नित्यार्चन।

मेरी आत्मा, गुरु पिता आप,
शुभ मति गुरु-पत्नी, मातु शिवा॥
सहचर साथी सब इष्ट मित्र,
स्कंद गजानन अग्रज हैं।
विषयोपभोग पूजा तेरी,
निद्रा समाधि की स्थिति है॥
मेरे द्वारा पद—संचारण,
करना ही समझो परिक्रमा।
ज्ञात, अज्ञात कर्म जो भी हैं,
सब तेरी आराधना॥

"तुम्हें नवाऊँ शीश"

[साहित्याचार्य डा० शिव मोतीसिंह 'आजाद' टूँडला]

धन्य-धन्य तोहि धन्य है, जहाँ सुख सागर अभिराम।
धन्य सवाई ग्राम को, जहाँ सिद्ध गुफा सा धाम॥
आपा आप विचार रात, दिन सुरति लगाऊँ।
तुम्हीं को मन मान, सुबह उठ शीश झुकाऊँ॥
आदि पुरुष अविचल तुम्हीं, पूरण विश्वावीस।
पुरुषोत्तम परमात्मा, तुम्हें नवाऊँ शीश॥
जब देखा मन सोचि, मूल तक सभी निहारों।
डाल-पात, फल-फूल, भेष और रूप तिहारों॥
सर्व नियम ब्रह्मज्ञान के, अगम निगम की सीख।
कह आजाद माँग रे मनुआँ, अमर अभय की भीख॥

विश्व निर्मात्री शक्ति नारी ।

[श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य]

(कायाकल्प साधना विद्यापीठ, सफीदों-हरियाणा)

—ॐ—

विश्व का निर्माण नारी शक्ति से है । वही महामाया, सरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली रूप में अपने नानात्व में स्थित विश्व लीला का निर्माण करती है ।

जिस प्रकार बच्चे आपस में खेल खेलते में छोटे-छोटे घरौंदे बनाते हैं, मिट्टी से उनका निर्माण करते है । पर खेल समाप्त करते समय सब तितर-बितर कर धूल में मिला देते है, और खेल को समाप्त कर देते है ।

यही लीला इस महामाया की है । संसार का खेल खेलता है, और फिर इसे स्वयमेव विलीन करती रहती है । यह खेल अनन्त काल से चल रहा है, और चलता रहेगा और शक्ति के इस खेल का नाम ही माया है ।

इसके प्रति-रूप संसार में व्यवहार रूप में देखे जाते हैं । वह स्वरूप है मातृत्व शक्ति नारी का । इसी लिए:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,
रमन्ते तत्र देवताः ॥

जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं । ऐसा बुध जनों का सिद्धान्त है ।

यह परि शुद्ध, परिष्कृत अनिर्वचनीय है । नारी की हृदय ग्रंथि का भेद न आज तक कोई जान सका है, न आगे जानने की सम्भवना है । इसके अनेक रूप हैं ।

माता, भगिनी पत्नि आदि-आदि—

मातृत्व का स्वरूप—

बिना मातृत्व के स्त्री जीवन सार्थक नहीं, इसीलिए इसमें पुरुष से विशेष भिन्नता है । पुरुष शरीर में ७ धातु हैं, पर स्त्री शरीर में ८ धातु है । आठवां धातु रज है । जो हर मास स्त्री के शरीर से विष दोष को दूर कर परिमार्जित करता रहता है ।

यथा—

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैताः
दुष्यन्ति कर्हि चित् ।
मासि मासि रजस्तासां,
दुष्कृतान्यपकर्षति ॥

स्त्रियां पवित्रता में अनुपम है, कारण कि इन के शरीर मन और बुद्धि में स्थित विष दोषों को प्रत्येक मास रज भरसक शरीर से पृथक करता रहता है । इसी से, इस काल में इन का स्पर्श आदि परिवर्जित है । शुद्धि के

बाद, ये सर्वथा अनुकूल एवं पवित्र है। एवं भोग बुद्धि के योग्य है। यही इनमें विशेषता है। शुद्धि के बाद स्त्री अंगों में एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति आ जाती है। और शरीर में विशेष प्रकार की आभा झलकने लगती है। उस समय स्त्री अपने आपको विशेष अलंकारों से सजाने की चेष्टा करती है। जिससे उनके सौन्दर्य में नवीनता आजायें। इसी का प्रतिरूप महाकवि कालीदास ने यों वर्णित किया है :

क्षणे-क्षणे यन्नवता मुपैनित देव रूपं रमणीयतायाः।

क्षण क्षण में जो नवीनता को प्रकट करे वही रमणीयता का प्रतिरूप है।

इसी चितवन के मोह में पशु-पक्षी स्थावर जंगम संसार के सभी प्राणि मात्र जकड़े हुए है। और यही मोह पाश संसार को आगे बढ़ाता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वाराणसी, फिरोजाबाद, आदि वरिस्ठ नगर है। जहां लाखों लोग इसी के उपहार में लगे, अपना उदरपूर्ण करते है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जीव मात्र इसी की क्रीड़ा का खिलोना है।

एक व्यक्ति अपनी धन पिपासा को मिटाने विदेश चला गया। वहां खून पसीना एक करके धन कमाया, फिर घर की याद ने मस्तिष्क में तरंग प्रवाहित की, घर चलने की तैयारी की। मार्ग में नाना प्रकार के विचार मन में आते रहे। घर से कुछ दूर रहते ही पैरों से जूते निकाले, और दौड़ने लगा। इस दौड़ को देख मार्ग स्थित लोगों ने पूछा भाई इतना क्यों दौड़ रहे हो। उत्तर मिला बच्चे याद कर रहे है।

यह है मनीराम की गति। इतने दिन विदेश रहा, परिश्रम किया, धन इकट्ठा किया फिर उसी माया के चक्कर में दौड़ लगाने लगा। यही इस मायाविनी का चक्कर है जो प्राणी मात्र को अपने जाल में फसाये हुए है। और यही वह सर्पिणी है, जो अनेक पुत्रों को जन्म दे कुण्डली मार बैठ जाती है और स्वयं ही उन बच्चों को खाने लगती है। कोई भाग्य शाली जीव जो कुण्डली से बाहर हो पाता है वह बच जाता है। कहने का अभिप्राय यह कि इसकी कुण्डली से निकले जीव सन्तोष की स्वांस लेते हैं। अन्यथा इसकी जिह्वा का ग्रास बन जाते है।

विश्व का निर्माण पालन संहार इसी के हाथ में है। नीति शास्त्र का वचन स्मरण हो आता है।

भूमिर्तिय हिरण्यं च विग्रहस्य कारणम्।
भूमि, स्त्री, लक्ष्मी ये तीनों ही लड़ाई की मूल प्रकृति है। इन तीनों स्वरूपों में इसी देवी के दर्शन होते है जो अपने आंचल को युद्धोन्माद से विक्षिप्त लोगों के रक्त से रंग अट्टहास करती है।

अतः इससे बचने का एक मात्र उपाय योग मार्ग है। जिससे इस के पाशों से छुटकारा पाया जा सकता है।

—x:x—

प्रार्थनामय जीवन

[श्री मधुसूदनजी वाजपेयी]

अमृत के बिन्दु

जब भी हम प्रार्थना करते हैं, तभी हर बार हमें अमृत की एक बूँद प्राप्त होती है, जो हमारी आत्मा को तृप्त करती है। प्रार्थना हमारी आत्मा की खुराक है। जहाँ पर भी दो व्यक्ति साथ बैठकर ईश्वर-प्रार्थना करते हैं, उतनी देरके लिये वह स्थान मन्दिर या तीर्थ बन जाता है। प्रार्थना के समय या तो हमारी आत्मा भगवान् के पास पहुँच जाती है या भगवान् हमारे पास आ जाते हैं; जैसे भी हो, हम उस समय भगवान् के साथ आमने-सामने खड़े होकर बातें करते हैं। भगवान् हमारी प्रार्थना सुनते हैं और हमें उत्तर देते हैं।

किसी भी क्षण की प्रार्थना में प्राप्त हुई अमृत की बूँद हमारी आत्मा में पड़ी रहती है और सदैव के लिये हमारे जीवन को प्रभावित करती रहती है। इसके विषय में भी कह सकते हैं कि इस धर्म का थोड़ा-सा भी पालन महान् भय से उबार लेता है। इसकी तुलना बरगद के बीज से की गयी है, जो देखने में जितना छोटा होता है उसका वृक्ष उतना ही बड़ा होता है, जिस पर आसमान के पंछी बसेरा लेते हैं। इसकी तुलना दही के जामन से की जाती है, जो स्वयं जरा-सा होता है परन्तु सारे दूध को जमाकर दही में परिणत कर देता है। ईश्वर प्रार्थना में बिताया हुआ एक क्षण भी सर्वनाश से हमारी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है; क्योंकि यह एक ऐसा बीज होता है, जो बड़ा होकर कल्पवृक्ष बन जाता है। अमृत की बूँद में समुद्र छिपा रहता है, जो समय आने पर प्रकट हो जाता है।

जिसके लिये भी हम ईश्वर से प्रार्थना करेंगे, उसे उसी समय ईश्वर का कृपारूपी अमृत बिन्दु प्राप्त होगा और वह अमृत उसे सजीव रूप में एक ठोस पदार्थ की तरह अनुभव होगा। हमारे कष्टोंको नष्ट करने के लिये प्रार्थना एक ऐसा ब्रह्मास्त्र है, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता। प्रार्थना एक ऐसा कवच या दुर्ग है, जो प्रत्येक भय से हमारी रक्षा करता है। प्रार्थना ही वह दिव्य रथ है, जो हमें सत्य, ज्योति और अमृत की प्राप्ति कराने में समर्थ होता है।

ईश्वर को अभी और इसी समय प्राप्त करने का बिलकुल सरल और अमोघ उपाय ईश्वर-प्रार्थना है। अभी आप प्रार्थना कीजिये और अभी प्रभु से आपका मिलन होगा और वे आपको अपने साम्राज्य का युवराज बना देंगे,

अपने भंडार की कुंजी आपको दे देंगे, उनकी समस्त प्रभुता और पूर्णता आपकी हो जायगी। परम सुख और परम आनन्द की वेला आ गयी है। भगवान् आपके सामने खड़े हैं और आप उनकी ओर देख नहीं रहे हैं; वे आपको जगाने आये हैं और आप सोये पड़े हैं। प्रार्थना रूपी जल के छींटे देकर अपनी आत्मा को जगायें और जो पाने योग्य है, उसे प्राप्त करें।

महान् संकल्प

प्रार्थना एक महान् इच्छा, आशा और विश्वास है। जैसी हमारी इच्छा होगी, वैसी ही हमारी आशा होगी और वैसा ही विश्वास होगा। यदि हमारी इच्छा कुछ है और विश्वास कुछ और तो वह इच्छा वास्तविक नहीं है। हार्दिक इच्छा का जन्म एक सजीव विश्वास के रूप में होता है। स्थूल पदार्थ या कार्य के रूप में परिणत होने वाला सजीव विश्वास एक प्रार्थना है।

हमारा जीवन हमारे विश्वासों का बना हुआ है। यह समस्त संसार हमारे मन का ही खेल है। जगत् वास्तव में मनोमय है। "जैसा जिसका मन, वैसा उसका जीवन" "जैसे जिसके विचार, वैसा उसका संसार।" हमारा प्रत्येक विश्वास, प्रत्येक आशा और प्रत्येक इच्छा, हमारा प्रत्येक भाव और विचार हमारे समस्त जीवन पर स्थायी प्रभाव डालता है। यही कारण है कि हमें अपने विचारों के प्रति सजग रहना चाहिये। एक विषाक्त घूँट हमारी उतनी हानि नहीं करेगा, जितनी हानि एक अशुभ विचार कर सकता है। प्रत्येक शुभ विचार हमारे लिये अमृत का एक बिन्दु बन जाता है।

हमारे विचार ही हमारी वाणी के रूप में प्रकट होते हैं और हमारे विचार हमारे ही कार्य बन जाते हैं। हमारे विचार हमारे आस-पास आने वाले हर व्यक्ति को स्पर्श करते और उसको प्रभावित करते हैं; वे दूर-दूर तक जाते हैं और संसार का कोई भी कोना उनके असर से अछूता नहीं रह जाता। इस विश्व को बनाने या बिगाड़ने में हर मनुष्य का और उसके हर विचार का हाथ है। हमारा हर विचार एक विष या अमृत की बूँद है, जो इस विश्व रूपी समुद्र को जहरीला या जीवनदायक बनाती है।

यदि हम इस विश्व को या अपने जीवन को अच्छा या सुखमय बनाना चाहते हैं तो हमें सदैव शुभ इच्छाएँ करनी चाहिये और अपनी शुभ इच्छाओं को आशाओं और विश्वासों में परिणत करना चाहिये। व्यक्तिगत एवं सामूहिक सुख-शान्ति के लिये हमें सदैव आशा-वादी दृष्टिकोण रखना चाहिये और अपनी मङ्गलमयी इच्छाओं को अपने मन में स्थिर रखना चाहिये। सजीव विश्वास बनकर वे वास्तविकता में परिणत हो जायेंगी। प्रत्येक शुभ इच्छा पूर्ण होती है, यदि उसे बीच में ही छोड़ न दिया जाय। जो मनुष्य जिस वस्तु की इच्छा करता है और जिसका समस्त जीवन उस इच्छा के अनुकूल होता है, वह अपने अभीष्ट अर्थ को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है, बशर्ते कि वह बीच में विरत न हो जाय।

इच्छा को जाग्रत्, आशा को चैतन्य और विश्वास को अचल रखने से समय पर सफलता अवश्य प्राप्त होती है; दैव भी उस सफलता में बाधक नहीं बन सकता।

हमें अपना दृष्टिकोण व्यापक रखना चाहिये और लक्ष्य ऊँचा बनाना चाहिये। ऐसा काम करना चाहिये, जिससे बहुत लोगों का भला हो। हमारी कामना जितनी ही महान् होगी, उतने ही अधिक लोग हमारे सहयोगी बन जायेंगे; पशु-पक्षी भी हमारी सहायता करेंगे और समस्त प्रकृति हमें सफल बनाने के लिये प्रयत्नशील हो जायगी। ऐसे अज्ञात स्रोतों से हमें सहायता मिलेगी, जिनकी हमने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। प्रत्येक शुभ विचार एक ईश्वरीय सन्देश है, जो सफल होने के लिए ही इस जगत् में भेजा जाता है। प्रत्येक महान् इच्छा एक ईश्वरीय प्रेरणा है, जिसका हमें स्वागत करना चाहिये और ईश्वरीय महिमा के इस पृथ्वी पर अवतरण में सहायक बनना चाहिये। प्रत्येक लोक-कल्याणकारी विचार के रूप में ईश्वरीय शक्ति प्रकट होती है। उस शुभ विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिये यदि प्रभु आपको माध्यम बनाना चाहते हैं तो आप निश्चय कीजिये और आगे बढ़कर प्रभु की इस कृपा को शिरोधार्य कीजिये।

हमें केवल भगवान् का ही सेवक बनना चाहिये और केवल उन्हीं का काम करना चाहिये। इस विश्व का प्रत्येक काम हमारी भावना और कार्यशैली के अनुसार या तो भगवान् का काम बन जाता है या शैतान का। हम एक ही समय में भगवान् और शैतान दोनों के सेवक नहीं बन सकते। हम या तो भगवान् की ही सेवा कर सकते हैं या शैतान की ही। अपने प्रत्येक कार्य, शब्द और विचार में हमें भगवान् का ही सेवक बनना चाहिये। यह हम अपने मन में शुभ इच्छाएँ रखकर ही कर सकते हैं। अपने लिये भी और दूसरों के लिये भी हमें हर समय शुभ इच्छाएँ रखनी चाहिये और प्रभु से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हमारी इच्छाएँ हर समय शुभ हों। हे प्रभो! शुभ इच्छा के रूप में आप हमें अपनी प्रेरणा प्रदान कीजिये, शुभ आशा के रूप में आप हमें अपनी स्फूर्ति प्रदान कीजिये, शुभ विश्वास के के रूप में हमें अपना आशीर्वाद प्रदान कीजिये। हे प्रभो! सबकी इच्छाएँ मङ्गलमयी हों; हर व्यक्ति की प्रत्येक इच्छा सर्वत्र कल्याण की ओर जाने वाली और ले जाने वाली हो। शुभ विचार ही हमारा नेता है, शुभ संकल्प ही हमें सत्य, प्रकाश और जीवन की ओर ले जाता है। हे शुभ संकल्प! हमें मार्ग दिखा और प्रभु की ओर ले चल।

चैतन्य अणु का विकास

[श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०]

[कुछ प्राचीन भारतीय दर्शनकार आत्मा को अणु परिमाणी मानते हैं। और कुछ विभु मानते हैं। प्रस्तुत लेख में शुक्ल जी ने जड़ अणु के समान चैतन्य-अणु को भी अपरिमित शक्तिशाली बताया है। स्वार्थ से चैतन्य-अणु की शक्ति नष्ट होती, है और स्वार्थत्याग से वह शक्ति विकसित होती है, यह विषय अध्यात्म और विज्ञान के अन्तर्गत है, "सिद्धयोग" के पाठकों को इस लेख से नई दिशा में सोचने की कुछ सामग्री मिलेगी। सं० सम्पादक]

आधुनिक विज्ञान ने अणु की शक्ति की जो खोज की है उससे हमारी मानसिक शक्ति का अन्दाज मिलता है। जिस प्रकार जड़ अणु में कल्पनातीत शक्ति है, उसी प्रकार चैतन्य अणु में भी कल्पनातीत शक्ति है, जड़ 'अणु की शक्ति को प्रकाशित करने के लिए उसे मशीनों के द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से तोड़ने की व्यवस्था करनी पड़ती है। अणु को तोड़ना कोई साधारण सी बात नहीं है। "अणु के तोड़ने के प्रयत्न में कितने वैज्ञानिकों की प्रयोगशाला ही उड़ कर आसमान में चली गई है। अणु एक बंद गोली के समान है उसके भीतर जिन परमाणुओं का संगठन है उनको चल-विचल करना बड़ा ही कठिन है। परन्तु यदि उन्हें चल-विचल किया जा सके तो बहुत बड़ी शक्ति का प्रकाशन हो।

चैतन्य-अणु के तोड़ने का परिणाम भी वही होता है जो कि जड़ अणु के तोड़ने का होता है। जड़ अणु बाहर से तोड़ा जाता है, और चैतन्य अणु भीतर से ही तोड़ा जाता है। जिस प्रकार प्रोटन के आस पास एलक्ट्रन घूमा करते हैं, इसी प्रकार अहं भाव के आस-पास मानसिक शक्तियां घूमा करती हैं। मानसिक शक्तियां इस प्रकार के घूमने से सीमित हो जाती हैं पर यदि मानसिक शक्तियां मुक्त की जा सकें अर्थात् वे स्वतन्त्र रूप से कार्यान्वित होने लगें तो वे सभी प्रकार से आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न करें।

जड़ और चैतन्य अणु के संगठन के एक भेद को ध्यान में रखना आवश्यक है। जड़ अणु के केन्द्र अनेक हैं। जड़ अणु देश में विभक्त है पर चैतन्य अणु देश में विभक्त नहीं है, अतएव सभी चैतन्य अणुओं के केन्द्र एक ही है। कल्पना के द्वारा ही केन्द्र को अनेक मान लिया गया है। मनुष्यों के व्यक्तित्व भिन्न हैं उनकी मानसिक शक्तियों में भिन्नता है, किन्तु सभी का मूल केन्द्र एक ही है। अतएव जिस समय

मनुष्य अपने भीतर कल्पित भेद को दूर करके अपनी मानसिक शक्तियों को सभी लोगों के कल्याण के लिए लगाने लगता है तो उसकी शक्तियां अपरिमित हो जाती है।

मानसिक शक्तियों को परिमित करने वाला भाव स्वार्थ भाव है। किसी भी कार्य का परिणाम उसके हेतु पर निर्भर करता है। जिस कार्य का हेतु किसी विशेष कार्य का साधन होता है, उसका परिणाम भी अल्प काल तक रहता है। जिस कार्य का हेतु लोकोपकार होता है उसका परिणाम भी दीर्घ काल तक ठहरने वाला होता है। लोकोपकारी कार्य करने पर चैतन्य-अणु की शक्तियां एक स्थान में केन्द्रीभूत न होकर बाहर प्रकाशित हो जाती है। जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के विषय में जितना ही उदासीन हो जाता है वह उतना ही अधिक महान् कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। अहं भाव को नष्ट करना ही चैतन्य-अणु की सीमा को तोड़ना है। जब चैतन्य-अणु की सीमा टूट जाती है तो उसकी शक्ति अनन्त हो जाती है।

हमारे सभी काम हमारे विचारों पर निर्भर है। विचारों की शक्ति चालबाजी और चतुराई पर निर्भर नहीं करती, उनकी शक्ति मनुष्य के हेतु पर निर्भर करती है। जिस विचार का मूल स्रोत महान है वह दूसरों के हृदयों पर ऐसा प्रभाव जमाता है कि उससे प्रतिकूल आचरण ही नहीं कर सकते। जो मनुष्य उच्च भाव से प्रेरित विचार के अनुकूल आचरण नहीं करते, उन्हें यातनाओं में पहुँचाना पड़ता है। अपने स्वार्थ से जो विचार विमुक्त है वह सब मनुष्यों के हृदयों का प्रेरक बन जाता है। जिस विचार में जितनी स्वार्थपरता पाई जाती है वह उतना ही अधिक शक्तिहीन होता है।

किसी विचार में कहां तक स्वार्थपरता है इसका ठीक अनुमान करना अत्यन्त कठिन काम है। दूसरे लोग तो सभी विचार को स्वार्थमय मानेंगे। यह हमारा हृदय ही जान सकता है कि किस विचार में स्वार्थ भाव है और किसमें नहीं। मनुष्य अपने स्वार्थ अनुसार ही दूसरे के हेतुओं का अन्दाज लगाता है, अतएव कितने ही सन्त महात्माओं को संसार के चतुर लोग धूर्त समझते हैं। पर इससे उनके विचारों की शक्ति नष्ट नहीं होती। आरोपित कमजोरी हमारी कार्यक्षमता को नष्ट नहीं करती।

संसार के महान् व्यक्तियों के जीवन को यदि देखा जाय तो उनकी कार्यक्षमता का मूल कारण अपने आपको भूल जाने में ही पायेंगे। भगवान बुद्ध ने तो अनात्म वाद का ही सन्देश दिया है। हम अहंकार से सदा घिरे रहते हैं, अहंकार को ही आत्मा मान लेते हैं। इस तरह हम अपने आपको दुःखी बनाए रहते हैं। अपने स्वार्थों को भूल जाना ही दुःखों से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है। भगवान बुद्ध ने अपना सारा जीवन लोकोपकार में व्यतीत किया। यही कारण है कि आज भी साठ करोड़ व्यक्ति उनके बतलाए हुए मार्ग का अनुसरण करते हैं।

हजरत ईसा ने लोकोपकार में अपने शरीर

को भी दान दे दिया। उन्होंने सारा जीवन ब्रह्मचर्य से बिताया और लोककल्याण में लगे रहे। यही कारण है कि ईसाई धर्म अभी तक जीवित है। लूथर ने जब अपने स्वार्थ को भूल कर लोकोपकार का संकल्प किया तो सारे योरोप में धार्मिक विप्लव हो गया। अपना स्वार्थ छोड़कर जो मनुष्य किसी काम को हाथ में ले लेता है वह उसमें सफलता अवश्य प्राप्त करता है। उसकी शक्तियां अब अणु की शक्तियों के सदृश कल्पनातीत क्षमता प्राप्त कर लेती हैं। स्वार्थ भाव का त्याग करना अपनी सीमाओं को तोड़ना है। सीमाओं के तोड़ने पर जो परिणाम अणु की शक्तियों के सम्बन्ध में होता है, मनुष्य की शक्तियों के सम्बन्ध में भी वही होता है।

किसी देश के राजनैतिक नेताओं की कार्य-क्षमता भी उनकी स्वार्थ विहीनता पर निर्भर करती है। महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस के जीवन से हम भली प्रकार परिचित हैं। मनुष्यों के हृदयों पर इनके विचारों का प्रभाव क्यों पड़ता है। जहां बड़े-बड़े विद्वानों के विचार व्यर्थ जाते हैं वहां एक सरल चित्त व्यक्ति के सामान्य विचार समाज में विप्लव उत्पन्न कर देते हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि सरल चित्त व्यक्ति अपना आत्मसात् दूसरों के साथ कर देता है और वह दूसरों का कल्याण करने में अपना स्वार्थ भूल जाता है जहां तक वह अपने आपको भूलता है, वह अपने काम में सफलता प्राप्त करता है। कोई भी सद्भावना से प्रेरित होकर किया हुआ कार्य व्यर्थ नहीं नहीं जाता उसका स्थायी परिणाम होता है।

राम-सतसई

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥
असन बसन सुतनारि सुख, पापिहु के घर होइ।
सन्त समागम रामधन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर॥
साहिब से सेवक बड़ो, जो निज धर्म—सुजान।
राम बांधि उतरे उदधि, लांघि गये हनुमान॥
सूर-समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाय रन, कायर करहिं प्रलाप॥

—महाकवि तुलसीदास

श्री सिद्धगुफा का वार्षिक योग महोत्सव

प्रभुजी की जयन्ती के भाव भीने कार्यक्रम

देश के कोने-कोने से आये गुरु भाई-बहनों का सम्मेलन

[श्री रामदास गुप्त पत्रकार, जम्मू काश्मीर से प्राप्त]

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, नवमी अर्थात् १८, १९ और २० अप्रैल सन ७५ को सिद्ध गुफा संथाई पर भारत के प्रख्यात सिद्ध योगी प्रभु रामलाल जी की पावन जयन्ती और सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र का वार्षिक योग महोत्सव त्रिदिवसीय समारोह के रूप में साथ साथ मनाया गया।

दस बारह हजार से अधिक साधक गुरुभाई बहिनों ने जो देश के प्रायः प्रत्येक भाग से आये हुए थे इस योग महोत्सव और जयन्ती पर्व में भाग लेकर अपने को कृत-कृत्य किया। सभी के आवास की व्यवस्था रुचि अनुकूल सुरम्य स्थानों पर रावटियां लगाकर की गई थी और सभी के सामूहिक भोजन की व्यवस्था भी आश्रम की ओर से निःशुल्क थी। महोत्सव के तीसरे दिन एक विशाल भंडारा हुआ जिसमें न केवल बाहर से आये हुए साधक भाई-बहनों ने प्रसाद पाया अपितु स्थानीय और समीपवर्ती कई हजार योग प्रेमी भाइयों ने भी जो प्रभु जी के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाने आये थे भण्डारे में सम्मिलित होकर प्रसाद ग्रहण किया। महाप्रभु रामलाल की जय के साथ जब कई सौ व्यक्ति सामूहिक रूप से भोजन आरम्भ करते थे तब वेद भगवान की यह वाणी चरितार्थ होती मालूम पड़ती थी 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'। योग महोत्सव का प्रथम दिन श्री महा प्रभु जी की सामूहिक आरती से आरम्भ हुआ जिसे स्वयं श्री सद्गुरुदेव जी ने अपने मुखार-विन्दु से उच्चरित किया और फिर उनकी वाणी का अनुकरण किया सहस्राधिक आगत गुरु भाई-बहनों ने। इसके पश्चात् भक्ति भाव पूर्ण भजन और श्री हरिनाम संकीर्तन का कार्य क्रम पूज्य बहन द्रौपदी देवी जी और कुमारी उमा शर्मा के संयोजन में आरम्भ होता रहा। इस कार्य-क्रम के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव जी गुरु गीता का पाठ व्याख्या सहित करके गुरु तत्त्व के महत्व और योग-मार्ग में ही नहीं किन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुरु की क्या और क्यों आवश्यकता है इसे भली प्रकार समझाते रहे। गुरु गीता की उनकी व्याख्या अपनी अनोखी

शैली लिये हुए थी जिससे श्रोता समूह अधिक प्रभावित रहा।

दोपहर बाद महिला सत्संग और संकीर्तन विशेष रूप से महिला मण्डल द्वारा होता था। पश्चात् बाहर से आई हुई संकीर्तन मण्डलियों के कलाकार अपने मधुर और भक्ति भावपूर्ण संगीत के सात्विक कार्यक्रम पेश करते रहे। शामली कार संकीर्तन मण्डल और फिरोजाबाद संकीर्तन मण्डल एवं झांसी संकीर्तन मण्डल के सामूहिकगान बहुत ही प्रभावोत्पादक रहे। संगीत रत्न बहन उमा शर्मा ने भी अपने अनेक भक्ति भाव पूर्ण गायन प्रस्तुत कर श्रोताओं को भाव-विभोर बनाया।

यौगिक सिद्धान्तों पर श्री सद्गुरुदेव जी के प्रवचनों के अतिरिक्त जो उपयोगी और ज्ञान वर्धक भाषण हुए उनमें ब्रह्मचारी श्री हरभक्त जी चैतन्य जम्मू काश्मीर, डाक्टर श्रुतिराम शर्मा और बहन द्रौपदी देवी जी के भाषण विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रभु निर्मित जीवन तत्व साधनों का प्रदर्शन और उनके लाभ तथा फलों पर भी सारगर्भित भाषण हुए। श्री राम कृष्ण शर्मा ने शिवपार्वती विवाह को प्रतिदिन रात्रि में संगीतमयरूप से प्रस्तुत करके आगत श्रोताओं को भली प्रकार लाभान्वित किया। महोत्सव की सारी कार्यवाही का संचालन श्री गुरुदेव जी के निर्देशन में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० भोलादत्त शर्मा के सफलता पूर्वक किया।

सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र के संचालक योगयोगीश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज ने गुरु गीता के माध्यम से जो तत्व हृदयंगम कराया वह यह कि यह मानव देह ही मुक्ति का साधन है और इस दुर्लभ मुक्ति को मनुष्य योग मार्ग का अवलम्बन करके आसानी से प्राप्त कर सकता है। संसार का उत्थान भी योग मार्ग से ही सम्भव है। आपने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि भारत की राष्ट्रीय सरकार भी अब योग विद्या के महत्व को स्वीकार करने लगी है और इसी लिए उसने दिल्ली में योग-रिसर्च इन्स्टीट्यूट खोलने का निश्चय किया है।

श्री ब्रह्मचारी हर भक्त चैतन्य ने अपनी यौगिक साधनाओं के अनुभूत प्रयोगों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि साधक प्रणवोपासना, अनाहत नाद योग कुण्डलनी एवं चक्र भेदन की स्थिति प्राप्त कर अपूर्व आनन्द रस का पान किस प्रकार कर सकता है। आपने यह भी बताया कि सवाई की सिद्धगुफा और ऋषि-केश का योग साधन आश्रम भारतीय ख्याति की सिद्ध पीठ हैं। यहां आते ही योग साधना स्वयं चालू हो जाती है।

गुरु महाराज जी की कृपा से जिनकी ध्यान स्थिति अच्छी बनी है उनमें कुछ इस प्रकार हैं। श्री दुर्गासिंह तोमर ग्वालियर श्री रामदास गुप्त काश्मीर बहन उमा शर्मा शामली सुश्री सुशीलादेवी बुलन्दशहर, श्री सुशीलादेवी पत्नी देवीसिंह सिसोदिया दिल्ली,

बहन मनोरमा, चन्डीगढ़। नारीप्रभा मित्तल सहारनपुर, प्रेमवती, मेरठ, परमला, हुण्डला,

(शेष टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर)

श्री गुरुदेव जी का आगामी योग-प्रचार कार्यक्रम

—※—

१० मई से १८ मई '७५ तक— ग्वालियर में योग प्रचार
पता
द्वारा श्री दुर्गासिंह तोमर
एक्साइज कमिश्नर
ग्वालियर

२० मई से ३० मई तक— इन्दौर में योग प्रचार कार्यक्रम
पता
द्वारा बाबा बालमुकुन्द
गीताभवन, इन्दौर

(४८ पेज का शेष)

वासुदेव, आबू पहाड़, महेन्द्र नारायण सिंह बरैनी मिर्जापुर, गोपीदेवी, दुगडला, ओमप्रकाश पालीवाल, आगरा, रामबिलास सिंह, कलकत्ता पारसनाथ सिंह बलिया, रामधनदास, कलकत्ता स्वामी प्रसाद सिंह कछवा मिर्जापुर, जशवन्त सिंह सिसोदिया मेरठ, आनीबाला दिल्ली आलम, पातीराम सिंह संवाई आगरा, रामचन्द्र शर्मा, संवाई आगरा।

राधेश्याम शर्मा झांसी तथा अन्य और भी ऐसे अनेक साधक हैं जो गुरुप्रसाद से कृतार्थ हुए हैं।

चौधरी रामदास गुप्त काश्मीर ने बतलाया कि दुनिया में तमाम धर्मों के बुनियादी उसूल एक ही हैं और मुझे योगयोगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज तथा योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की कृपा से तमाम मजहबों के पैग-म्बरों के दर्शन ध्यान में हुए हैं और उनसे प्रेरणा मिली है।

यह मुझे गुरु कृपा से ध्यान योग द्वारा कई महीने पहले मालूम हो गया था कि काश्मीर के प्रधान मन्त्री शेख अब्दुल्ला बनेंगे आदि। अन्तिम दिन उत्सव की समाप्ति घोषित कर दीगई।

—※—

Sidhayoga Regd. No. L/AL 1000

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक सम्पादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

हे प्रभो! [illegible] शुभ विचार वाला होवे।

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

हे प्रभो! [illegible]

मुद्रक—[illegible] शर्मा 'सिद्ध' [illegible]